अगम वाणी:दयाल फकीर साहब

ISBN 9789380470009
निःशुल्क वितरण के लिए
प्रकाशक
कश्यप पब्लिकेशन
बी 48/यूजी 4, दिलशाद एक्सटेंशन 2,
डी.एल.एफ., गाजियाबाद (उ.प्र.)
संस्करण : 2009

प्रस्तावना

संतमत में 'अगम' शब्द का अर्थ एक ऐसी अवस्था से है जहाँ मन और बुद्धि की पहुँच नहीं होती. परम दयाल फकीर चन्द जी महाराज ने अपने कई सत्संगों में उस अवस्था का वर्णन खोजियों के लाभ के लिये किया है. यह पुस्तक उनके ऐसे ही सत्संगों का सकंलन है. ये सत्संग वर्ष 1967-68 में कुल्ल, हिमाचल प्रदेश और मानवता मंदिर होशियारपुर में दिये गये थे. इसमें परम दयाल जी महाराज ने सुरत शब्द योग के विभिन्न अनुभवों को सनातन धर्म, वेदान्त, संतमत और राधास्वामी मत की शब्दावली के साथ व्याख्यायित किया है. यह उनके सुलझे और सरल कथन का उत्कृष्ट नमूना है. यह पुस्तक फ़कीर लाइब्रेरी चेरिटेबल ट्रस्ट को निःशुल्क वितरण के लिए भटें की गयी है.

भारत भूषण

अगम वाणी:दयाल फकीर साहब

गुरुर्ब्रह्म गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मैः श्री गुरुवे नमः

अगम वाणी

बाबा अगम अगोचर कैसा, ताते कहि समझाओ ऐसा.

जो दीसै सो तो है नाहीं, है सो कहा न जाई, सैना बैना कहि समझाओ, गूंगे का गुड़ भाई.

दृष्टि न दीसै मुष्टि न आवै, बिनसे नाहिं नियारा, ऐसा ज्ञान कथा गुरु मेरे, पंडित करौ विचारा.

बिन देखे परतीति न आठो, कहे न कोऊ पतियाना, समुझा होय सौ सब्दै चीन्है, अचरज होय अयाना.

कोई ध्यावै निराकार को, कोई ध्यावे आकाशा, वह तो इन दोऊ ते न्यारा, जानै जाननहारा.

काजी कथै कतेब कुराना, पंडित बेद पुराना, वह अच्छर तो लखा न जाई, मात्रा लगै न काना.

नादी बांदी पढ़ना गुनना, बहु चतुराई भीना, कहैं कबीर सो पड़ै न परलय, नाम भक्ति जिन चीन्हा.

भूमिका
(परम दयाल फकीरचन्द जी महाराज)

जीवन में एक कुरेद थी. वह कुरेद दाता दयाल महर्षि शिव के चरणों में ले गई. उस पवित्र विभूति ने फकीर या संत बनने का ख्याल दिया और अन्तिम पद पर पहुँचने के लिये नाम दान दिया. एक बार संत या फकीर की पहचान बताते हुए मुझे लिखा था :-

अपने रूप में निश दिन बरतें, करें दया की वृष्टि।

चूँकि दया की वृष्टि करने का संस्कार था मगर दया की वृष्टि करने से पहले यह शर्त थी कि अपने रूप में बरतूँ. अपने रूप की समझ नहीं आती थी. इसकी समझ उनकी कृपा से सत्संगियों के अनुभवों ने दी है. केवल इस ख्याल से कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता और लोगों के अन्तर में मेरा रूप प्रगट होता है, उनकी सुरतें चढ़ाता है, दवायें बताता है, रहनुमाई करता है, मरते समय साथ ले जाता है, मेरी कोई कही हुई बात पूरी हो जाती है, मैं मजबूर हो गया कि मैं मानूँ कि मेरे अन्तर जो कुछ भी जीवन भरा हुआ था या मैंने देखा, वह सब मेरे अपने ही मानसिक या आत्मिक खेल का परिणाम था. इसलिये मैंने अपने मन और आत्मा से परे या ऊँचा होकर किसी वस्तु की खोज शुरू की. उस खोज के अनुभव का नाम सत, अलख, अगम है. जब वह खोज और यह सत, अलख और अगम का अनुभव भी समाप्त हो जाता है तो फिर न मैं न तू, न गुरु न चेला, न गुणी न गुण कोई नहीं रहता. गूंमगूं का विषय है. उस अवस्था का नाम अनामी पद है. मेरा कोई दावा नहीं है. मैं रिसर्चर हूँ. अपना अनुभव कह रहा हूँ. इस अवस्था के अनुभव के बाद मैं सोचता हूँ कि अपने रूप का तो पता लग गया, इसमें रहने की कोशिश भी करता हूँ मगर प्रश्न होता है कि दया की वृष्टि क्या करूं.

इस दया का भाव लेकर मैंने यह सोचा कि कुदरत का जितना रहस्य समझ में आया है उसको वर्णन कर जाऊँ ताकि इस राज़ या रहस्य को समझ कर दूसरे प्राणी क्रियात्मक (बा अमल) होकर अपनी शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति कर सकें तथा शान्ति या आनन्द ले सकें. इसलिये मैंने यही समझा कि दया की वर्षा यही है कि संसार के अशान्त और भ्रान्त जीवों के लिये सही रास्ता तथा सही उपाय बता जाऊँ. कोई दूसरी बात मेरी समझ में नहीं आई कि मैं कैसे दया करूँ. इसलिये दाता दयाल की आज्ञानुसार दूसरों की नुक्ताचीनी की परवाह न करते हुए उनका चोला छोड़ने के बाद काम किया. चूंकि मैं रेडिएशन के नियम को वर्तमान विज्ञान के अनुसार ठीक समझता हूँ. इसलिये हर समय अपने हृदय और आत्मा के अन्दर यह वासना रखता हुआ 'नानक तेरे भाने सरवत का भला', बड़े से बड़ा, पापी से पापी और भले से भला जो मेरे सम्पर्क में आता है सबके हित की इच्छा रखता हूँ और चाहता रहता हूँ कि इन सब का भला हो. हो या न हो, मेरे इस काम से किसी को लाभ पहुँचे, मेरा ध्यान इस ओर नहीं है. दाता दयाल का दिया हुआ यह एक संस्कार था :-

तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेषा, दुखी जीव को अंग लगाकर, लेजा गुरू के देसा.
तीन ताप से जीव दुखी हैं, निबल अबल अज्ञानी,तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी.
तेरा रूप है अद्भुत अचरज, तेरी उत्तम देही, जग कल्याण जगत में आया, परम दयाल सनेही.

इसलिये इस आज्ञावश मैंने काम किया. समझदार और थोड़ी सी भी बुद्धि रखने वाले प्राणी यदि

मेरी बात पर जो मैं 26-27 वर्ष से कह रहा हूँ, ग़ौर करेंगे तो इस साम्प्रदायिक और पांथिक लूटमार और अनसमझी से बच सकते हैं. साथ ही अपने विचार को बदल कर तथा क्रियात्मक होकर इस जीवन में सुख शान्ति प्राप्त कर सकते हैं.

रहा आवागमन से बचना, जहाँ तक अनुभव का सम्बन्ध है मैं समझ तो गया हूँ मगर क्या पता अन्त समय में मेरी क्या दशा हो. इसको मालिक जानता है. फिर भी जितना अनुभव हुआ उसके आधार पर कहता हूँ कि जब तक हमारी सुरत अन्तरी शब्द में या नाम में, जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भाव-बोध से परे, हमारे अपने स्वरूप का शब्द है, जिसको निजनाम, राधास्वामी नाम या सत् नाम आदि कहते हैं, नहीं जाती, काल और माया का खेल समाप्त नहीं होता.

इस पुस्तक में जो लेख मैंने लिखे हैं वह अपने जीवन की अन्तिम दशा का अनुभव करने के पश्चात् लिखे हैं. इसलिये इस का नाम 'अगम वाणी' रखा है.

दावा किसी बात का नहीं है. ऐ दाता! न कुछ मैंने किया, न करने योग्य था और न हूँ. तेरी मौज का खेल है. अभी होश आता रहता है. होश में आकर सब काम करता रहता हूँ और जब तक जीवन है करता रहूँगा मगर अब तबीअत गुम होना चाहती है.

फकीर 19-6-67

1. अगम वाणी

सत-अलख-अगम-अनाम

(कुल्लू 23-6-67)

जब कोई ख्याल या संस्कार दिमाग पर पड़ जाता है, यदि वह प्रबल है, तो उस समय तक चैन नहीं लेता जब तक मनुष्य तद्रूप नहीं हो जाता. मैं बचपन से उस परमात्मा, परमेश्वर, राम या ब्रह्म से मिलने तथा दर्शन करने के ख्याल से चलता हुआ आ रहा हूँ. मालूम नहीं यह पिछले जन्मों के संस्कार हैं या परमेश्वर की इच्छा है. कुछ निर्णय नहीं कर सकता. मौज संतमत या राधास्वामी मत में ले आई. यहाँ पर दाता दयाल महर्षि शिव और संतमत की वाणियों ने इस सत-अलख-अगम और अनाम आदि के शब्दों द्वारा उस परम तत्त्व का ख्याल दिया. उसके लिये यह साधन या निज नाम का सुमिरन, ध्यान और अन्तर में अनहद शब्द का सुनना या भजन मिला था. अच्छा होता कि मैं इस गुरु पदवी पर न आता. लाभ यह हुआ कि अलख, अगम, अनाम आदि जिन अवस्थाओं के लिये ये शब्द गढ़े गये थे, उनका अनुभव हो रहा है. हानि यह हुई कि दुनियावी जीवन, विचार और विवेक का जीवन अथवा प्रेम और ज्ञान का जीवन नीरस हो गया. आज कल कुल्लू, हिमाचल प्रदेश में हूँ. प्राकृतिक दृश्यों का प्रभाव दिमाग पर पड़ता है तो तवज्जह इन दृश्यों से ऊपर जाने की कोशिश करती है. क्यों? क्योंकि यह दृढ़ निश्चय हो गया अथवा पूर्ण विश्वास हो गया कि ये सब दृश्य जो बाहर में खुली आँख से दृष्टिगोचर होते हैं ये छाया हैं. ये कर्तापुरुष या सृष्टि के रचने वाले कर्तापुरुष के संकल्प का परिणाम हैं. जो संकल्प इस कर्तापुरुष के उठते हैं वे माया हैं. संकल्प या माया त्रिकुटी या ओंकार के स्थान से उठते हैं. वह स्थान यहाँ नहीं, इन सूर्य, चन्द्रमा, तारागणों, नवग्रहों से कहीं ऊपर है. इसका प्रमाण मुझको सत्संगियों के तथा अपने अनुभव से मिला. केवल इस ख्याल से कि मैं किसी के अन्दर नहीं जाता, लोग अपने ही ख्याल से या अपने ही संकल्प से, जो वास्तव में उनकी अपनी माया है मुझको अर्थात् मेरे रूप को जाग्रत में बनाकर काम लेते हैं, मुझे विश्वास करा दिया कि यह सब रचना

वृक्ष, पहाड़, रेगिस्तान, वायु, मिट्टी आदि सब कुछ इस कर्तापुरुष के संकल्प 'माया' की छाया है. इस समझ के बाद भी चूंकि कुरेद रहती है, अपने असल की या अपने निजस्वरूप को खोजता रहता हूँ क्योंकि सत, अलख, अगम और अनामी अवस्थाओं का संस्कार मिला हुआ है. सोचता हूँ कि संकल्प या माया से परे क्या है. संकल्प से परे प्रकाश है. यह ही ब्रहम है! कर्तापुरुष है. यही सोहं है. इसके संकल्प के कारण यह कुल सृष्टि छाया रूप में खेल खेल रही है. जीवन, मृत्यु, ब्रहमा, विष्णु, महेश, देवी, देवता, सुर, असुर सब इसी के संकल्प का परिणाम है. कोशिश करता रहता हूँ कि इस कर्तापुरुष, प्रकाश या ब्रहम की दुनिया से निकल जाऊँ. स्वामी जी की वाणी है :- 'काल ने रची त्रिलोकी सारी'.

अनुभव सिद्ध करता है कि इससे निकलना कठिन काम है. देह का बंधन नीचे खेंच लाता है. केवल कभी साधन के समय निकला तो आध घंटे एक घंटे के लिये या कुछ और अधिक. आगे केवल अस्तित्व 'हस्ती' को "हैपना शब्द रूप में मौजूद है. इसके अतिरिक्त जो कुछ मैं महसूस करता हूँ कि उसका वर्णन अनिर्वचनीय है. जब साधन करते समय समाधि में चला जाता हूँ तो न वहाँ दाता दयाल होते हैं न कोई और. जब वहाँ से उत्थान होता है तो कर्तापुरुष, ब्रहमा, विष्णु, महेश 'संकल्प की तीन शक्तियों' के महत्व का ख्याल न होने के कारण मन और देह में नीरसता आ गई. इनमें कोई आकर्षण या स्वाद नहीं रहा. इसलिये यह जीवन सांसारिक आनन्ददायक नहीं है. उदासीन वृत्ति हो गई है. इसलिये कहता हूँ कि मानवधर्म जो आदि से है यानी जब से मनुष्य बना, जिसे सनातन धर्म कह लो, पूर्ण है. यह संतमत की शिक्षा विशेष- विशेष मनुष्यों के लिये है. जिसको यह अवस्था प्राप्त भी हुई, वह संसार की ओर से अकारण वैराग्य के कारण अथवा अनुभव ज्ञान के कारण छूट गया. जन साधारण के लिये यह बात अधूरी है. इस अनुभव के आधार पर यह कहना चाहता हूँ कि ऐ मनुष्य मेरी तरह तू बाल की खाल निकालने की कोशिश न कर. केवल एक विश्वास, कि हस्ती 'हैपना' है, रखता हुआ इस संसार में अज्ञानी बनकर आनन्दमय जीवन व्यतीत कर. आनन्द अज्ञान में है क्योंकि सर्व साधारण के लिये यह मार्ग सुखदायक है. विशेष-विशेष व्यक्तियों की बात अलग है जैसा कि गुरु नानक ने कहा है :-

'कोटिन में कोऊ नारायन जिन चेत'

इस ख्याल को दृष्टि में रखते हुए मैंने संतसत्गुरु की हैसियत से 'इंसान बनो' की आवाज उठाई. ऐ इंसान! तू केवल इस बात का विश्वास रख कि वह एक शक्ति है जिसकी प्राप्ति के लिये जो गया, वह अपना अस्तित्व खो गया. अनाम हो गया. जब तक दुनिया है हम मौजूद हैं. संसार में एक दूसरे के काम आओ. प्रेम-प्रीति और परस्पर सहायता के सिद्धान्तों पर चलो. खुशी से जीवन काटो. सबको अपने जैसा मनुष्य समझो. काम करो! जीओ और जीने दो.

संतमत या राधास्वामी मत की शिक्षा उनकी मानसिक शान्ति के लिये है जो इस मार्ग के इच्छुक हैं. यह जन साधारण की वस्तु नहीं. इस समय तक यह समझ में आया है.

यह दुनिया ख्याल या संकल्प की दुनिया है. इसमें मनुष्य का संकल्प काम करता है. मैं कुल्लू आया. न ख्वाब न ख्याल यहाँ आ गया. मालूम हुआ कि श्री बख्तावरसिंह जो एक्साइज़ एण्ड टैक्सेशन आफीसर हैं यहाँ हैं. वह, उनकी स्त्री और बच्चे मुझसे बड़ा प्रेम मानते हैं. इसकी जानकारी भी यहाँ आकर हुई. हैरान होता हूँ कि इनका ख्याल मुझे कैसे यहाँ खेंच लाया. ख्याल या संकल्प के नियम को जानता हुआ मेरा अनुभव कह रहा है कि इस दुनिया में, जो संकल्पमय है या

मनोमय है, मनुष्य का ख्याल ही काम करता है. फिर इस त्रिगुणात्मक जगत में कौन सा नियम है जो सुखदाई हो सकता है. वह है वेद मार्ग 'शिव संकल्पंस्तु' का नियम.

नोट:- मैंने अपने अनुभव के आधार पर स्पष्ट कर दिया कि सत, अलख, अगम आदि की शिक्षा आम पब्लिक के लिये नहीं है. यही बात परम पुनीत राय सालिगराम साहब ने कही है. वाणी में दी हुई आरती में एक कड़ी है-

आये भवजल नाव बनाई, हम से जीवन लिया चढ़ाई.

शब्द दृढ़ाया सुरत बताई, करम भरम से लिया बचाई.

अर्थात् यह सुरत शब्द का मार्ग केवल उनके लिये है जो अपने आदि को जाना चाहते हैं, जो संसार से विरक्त हैं. इसलिये मैंने विशेष के लिये सुरत शब्द योग के सहारे जहाँ अन्तिम अवस्था का ख्याल दिया, वहाँ आम पब्लिक के लिये इंसानियत के ख्याल का प्रचार किया.

2. सत-अलख-अगम-अनाम

(कुल्लू 24-6-67)

जब से जीवन बना और जीवन में विवेक का माद्दा उत्पन्न हुआ, किसी वस्तु की खोज पैदा हुई. खोज तो अब भी समाप्त नहीं हुई मगर उसका रूप बदल गया. जीवन कोई न कोई ख्याल लेकर उसका रूप बनाकर सहारा लेता था. मेरे मस्तिष्क में धार्मिक या पांथिक ख्याल के अनुसार कोई न कोई सहारा या आश्रय था. दूसरों के दिमागों में और अनेक प्रकार के ख्याल-विचार आते होंगे. अनुभव ने सिद्ध किया कि ये जितने सहारे, ख्याल अथवा विचार मनुष्य के दिमाग के अन्दर पैदा होते हैं, ये कुछ तो जिस प्रकार की प्रकृति से दिमाग बना हुआ है उस प्रकार के ख्याल व विचार बचपन से पैदा होते हैं, कुछ उन विचारों पर बाह्य प्रभाव जो परस्पर मेल-मिलाप से, पुस्तकों से, सुनने से, छूने से पड़ते हैं, उनका खेल है. जीवन के हल करने के लिये मैंने यह सारा जीवन खो दिया. दिमाग पर रामायण, महाभारत, राधास्वामी मत, कबीर मत के संस्कार थे. उन संस्कारों के कारण जब-जब अन्तर में खोज करता था तो वही संस्कार, रूप रंग या विचार आदि प्रगट होते थे. उनको सत मानकर मेरा जीवन खुशी, आनन्द तथा रस लेता रहा है. जब से मुझे यह ज्ञान हुआ कि मैं किसी के अंतर नहीं जाता और लोगों के अंदर मेरा रूप कभी प्रकाश में और कभी बिना प्रकाश में उनको दृष्टिगोचर होता तथा उनसे बातें करता है, तब से मेरे दिमाग के अन्दर प्रथम तो ये रूप-रंग, दृश्य या विचार मेरी समाधि अवस्था में पैदा नहीं होते और यदि होते हैं तो अनुभव-ज्ञान के कारण मैं इनका कोई महत्व नहीं समझता. उन्हें कल्पित या फ़र्ज़ी समझता हूँ ऐसा समझता हुआ भी जो मेरा अपना अस्तित्व है जिसको यदि यह कह दूँ कि वह शाश्वत (दायमी) है जिसमें न रूप है न रंग है, न रेखा है, न विचार रहते हैं, तो अनुचित नहीं. मगर ऐसी अवस्था में रहते हुए भी वह अस्तित्व किसी अज्ञात शक्ति या केन्द्र की ओर खिंचता रहता है. सफर समाप्त होने पर नहीं आता. यह ठीक है कि इस सफर में अर्थात् अरंग, अरूप, निर्विचार, निरिच्छा की अवस्था में एक विशेष प्रकार का आनन्द, शान्ति या चेतन्यता रहती है मगर अस्तित्व 'हस्ती' के अन्दर दबा हुआ खिंचाव, खिंचाव के रूप में मौजूद रहता है, जो किसी अज्ञात वस्तु की ओर खींचता है. स्वामी जी महाराज इस अवस्था को इस प्रकार वर्णन करते हैं:-

'खिच रहूँ मेरे प्यारे राधास्वामी.'

जब इस अवस्था से उत्थान होता है तो दुनिया देखता हूँ. विशेष कर जाग्रत अवस्था में जब प्राकृतिक दृश्य सामने आते हैं तो ख्याल आता है कि जीवन क्या है. क्या जीवन का रहस्य हल हुआ? मैं तो कहूँगा कि नहीं हुआ. मालूम नहीं दिमाग़ी हालत खराब है. यदि दिमाग़ खराब होता तो जाग्रत में मेरी स्थिति बेकाबू होती मगर जाग्रत में पूर्णतया काबू में है और विवेक-विचार है. इसीलिये कहता हूँ कि इस अस्तित्व का अन्त पाना मेरे लिये असम्भव ज्ञात हो रहा है. इस अस्तित्व (हस्ती) का किनारा नहीं मिलता. कई बार सोचता हूँ कि यह जीवन चाहे मनुष्य का है चाहे पशुओं का या वनस्पतियों का अथवा यदि ऊँचे लोकों में जीवन है तो यह जीवन क्या है. यह अस्तित्व (हस्ती) के क्षोभ अथवा उस परम तत्त्व के सब दृश्य और खेल हैं.
अब जीवन कैसे गुजारता हूँ? जाग्रत में गहरी नींद की अवस्था है और गहरी नींद में जाग्रत अवस्था है. जीवन में मृत्यु है. मृत्यु से मेरा अभिप्राय सब कुछ भूल जाना है. इस मृत्यु में जीवन है क्योंकि सब कुछ भूल जाने पर भी अस्तित्व का हैपना मौजूद है. अब जो पहिले धर्म, कर्म, योग युक्ति, प्रेम और भक्ति के संस्कार थे और जो मेरे जीवन के अंग थे इस आयु में सब समाप्त हो गये. कल को क्या होगा, नहीं मालूम. होश में आकर कई बार सोचता हूँ कि मैं पथभ्रष्ट हो गया. गुरु, ईश्वर परमेश्वर, ब्रह्म, परब्रह्म आदि के संस्कार समाप्त हो रहे हैं. केवल दातादयाल महर्षि शिव, सन्त कबीर तथा राधास्वामी दयाल की वाणियाँ हैं जो हौसला देती रहती हैं कि ऐसा होना ही था. दाता दयाल महर्षि शिव मेरे नाम आशीर्वाद के शब्द में लिखते हैं:-
गुरु से प्रेम बढ़ाया तू ने, गुरु चेला व्यवहारा, भोगे प्रालब्घ तब कुछ नाहीं, आगे अगम अपारा.
(देखो फकीर भजनावली, शब्द 50 वां)

ऐसे ही स्वामी जी की वाणी है :-
नहिं खालिक मखलूक न खलकत, कर्ता कारन काज न दिक्कत.
राम रहीम करीम न केशो, कुछ नहिं कुछ नहिं था सो.
सेवक सेव न दास न स्वामी, नहिं सतनाम न नाम अनामी.
आदि-आदि. 'बारह मासा' जेठ आरती के शब्दों में आता है :-
तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा,सत्त नाम सतगुरु गति चीन्हा.
ऐसे ही कबीर साहब की वाणियाँ हैं.
सोचता हूँ क्या इस अन्तिम अवस्था में आया मनुष्य कुछ कर सकता है अथवा क्या मैं किसी का कुछ भला कर सकता हूँ. वर्षों तक कुछ समझ में नहीं आया था. दाता दयाल ने शायद मेरी अपनी खोज या कुरेद को समाप्त करने को काम दिया हो. अब यही समझा कि यदि मैं कुछ कर सकता हूँ तो यही कि सच्चे हृदय से चाहता हूँ कि मानव जाति का कल्याण हो. भारतवर्ष में इंसानियत आये. अब तक जो समझा या अनुभव किया वह कह चला. धार्मिक खोज का जो मेरा परिणाम निकला उसको सामने रखता हुआ इतना कहूँगा कि ऐ मानव वंश! तूने उस ख़ुदा या ईश्वर के नाम पर अपनी अनसमझी से मानव जाति को विभिन्न सम्प्रदाय और पंथों में बांट दिया हुआ है. इसलिये मैंने अपनी नीयत से केवल मानव जाति की एकता की दृष्टि से इस गुप्त रहस्य को जिसको समझना टेढ़ी खीर है बहुत हौसला करके प्रगट किया है. इसका क्या परिणाम हो मौज जाने!

प्रश्न :मास्टर मोहनलाल ने प्रश्न किया कि जागते हुए गहरी नींद में जाने से आपका क्या अभिप्राय है?
उत्तर :सुनो! मैं यहाँ कुल्लू में हूँ. यहाँ के सब दृश्य देखता हूँ. श्री बख्तावरसिंह के यहाँ ठहरा हुआ हूँ. और लोग भी आते रहते हैं. चूंकि मुझे विश्वास है कि मैं यहाँ का रहने वाला नहीं हूँ, कुल्लू मेरा देश नहीं है तो सब कुछ करता हुआ मैं इसको अस्थाई समझता हूँ. इसमें कोई दिलचस्पी नहीं. इसी प्रकार जब मनुष्य को उस अपने असली घर का, जिसे मैं अलख, अगम और अनामी कहता हूँ, अनुभव हो जाता है तो इस दुनिया अर्थात् काल और माया में रहता हुआ भूला रहता है. गहरी नींद में भी आदमी सब कुछ भूल जाता है. मैं ऐसा समझता हूँ. इसी को कहते हैं कर्म करते हुये अकर्ता रहना.

3. सत-अलख-अगम-अनाम

(मनीकर्ण 26-06-1967)

मैं आजकल ग्राम मनीकर्ण जिला कुल्लू में हूँ. एकान्त होने के कारण दिमाग़ उन संस्कारों को जो बचपन से मिले हैं क्रियात्मक रूप से रहनी में देखना चाहता है और वहाँ रहने का प्रयत्न करता है. बैठा हुआ था कि दातादयाल महर्षि शिव का एक शब्द सामने आया :-
संतो समझे का मत न्यारा, जो आतम तत्व विचारा.
औरन से कहे आपा खोजो, आप अपना नहिं जाने,
मुख कुछ आन हिरदे कुछ आना, कैसे राम पहिचाने ...
इस शब्द में बहुत सी बातें हैं --निर्मोही रहना, अपनी बड़ाई का त्याग, पक्षपात का त्याग, दुनिया को साधु-संत बनकर दिखाना, राग-द्वेष मन में न रखना. यह राग द्वेष, मोह ममता, साधु-संत बनना, मान बढ़ाई की इच्छा, यह तो दाता की दया से मेरी समाप्त हो गई. वह कैसे?---केवल इस समझ से कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता. लोग अपने ही ख्याल से मेरा रूप बनाते हैं और आनन्द, ऋद्धि-सिद्धि आदि प्राप्त करते हैं. यह सब खेल संकल्प के हैं, माया के हैं. जब तक मनुष्य के संकल्प-विकल्प, जो माया हैं मिथ्या हैं, कल्पना से भासते हैं और वह भासना प्रत्यक्ष सामने आता है. इस ख्याल से मैं सब अब समझ गया कि यह मान, बड़ाई, मोह आदि सब के सब माया हैं. मैं इसमें नहीं फँसता मगर इस माया के त्यागने के बाद अर्थात् संकल्प को छोड़ने के बाद आत्मरूप होकर क्या कुछ कर सकता हूँ! सिवाय इसके कि अपने शब्द या प्रकाश रूप में रहता हुआ अपने चेतनपने का अनुभव करके चेतन्यता का जीवन गुजारूँ और मेरी समझ में कुछ नहीं आया. फिर इस शब्द के अनुसार आपा खोजने से क्या प्रयोजन निकला. जब इस आत्मपद में रहते हुए मैं किसी का कुछ बना ही नहीं सकता तो सिवाय इस बात के कि मैंने अपने आप में मन को छोड़ने के बाद अथवा मायातीत होने के बाद अपनी चैतन्य अवस्था में कुछ समय के लिये जब तक सुरत फिर मन और शरीर में न आये, एक चेतन्यता का आनन्द ले लिया और क्या हुआ. संतों के इतिहास को पढ़ने पर संतों के बारे में जो कुछ वाणियाँ लिखी हुई हैं उनको चित्त नहीं मानता. यह चेलों की अथवा विश्वासी लोगों की मन गढ़ंत वाणी है.
यहाँ इस ग्राम में गर्म पानी के सोते हैं. एक पुराना रघुनाथ जी का मन्दिर है. इनके इतिहास में यह बताया जाता है कि शिव और पार्वती यहाँ आये तो पार्वती के कहने पर शिवजी ने अपनी

जटाओं से ये गर्म पानी के सोते बना दिये. इसके साथ ही एक सोते और हैं जहाँ सिख यह सिद्ध करते हैं कि गुरु नानक और भाई लहना व लालो यहाँ आए थे. उनको गर्म पानी की आवश्यकता थी सो गुरु नानक ने कहा कि भाई इस पत्थर को उखाड़ डालो. गर्म पानी निकल आयेगा. अब यहाँ दो स्थान हो गये. एक हिन्दुओं का और दूसरा सिखों का. अन्तरीय खेंचतान चल रही है. यहाँ के पंडित अपनी पुरानी, बहियों से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि वह सबसे पहले यहाँ के हक़दार हैं. संसार वालो! बुरा कहो या भला कहो. ये हिन्दू और सिख दोनों भूले हुए हैं. न शिवजी के मानव रूप की जटाओं से यह गर्म पानी के सोते बने होंगे और न गुरू नानक साहब ने बनाये होंगे. इस प्रकार की अनसमझी से यह मानव जाति बिना विचार के भटका खा गई. इस मनीकर्ण को तथा कुल्लू की पहाड़ियों को देवताओं की भूमि कहा जाता है और मैं इस बात को सत मानता हूँ. देवता कहते हैं दिव्य शक्तियों को. इस पहाड़ में प्रकृति की शक्तियाँ अधिक दृष्टिगोचर होती हैं. इसलिये यह देवताओं की भूमि है. पार्वती नदी गंदला पानी लिये हुये बहती है और उसका पानी छलाँग मारता हुआ जाता है. दूसरी ओर ब्रह्म गंगा पहाड़ों से बहती हुई निर्मल जल बहाती हुई पार्वती नदी से मिलती है. एक ओर नदी का जल बर्फ की तरह ठंडा है और दो गज़ की दूरी पर ऐसा गर्म पानी है जिसका तापमान 94 डिग्री है. एक ही जगह प्रकृति की शक्तियाँ दो प्रतिकूल दशाओं को प्रगट कर रही हैं. इसलिये मैं समझता हूँ कि यह प्रकृति की दिव्य शक्तियों का स्थान है. मेरा अपना दिमाग इन दृश्यों को देख कर उस कारीगर भगवान, ख़ुदा या और नाम कह लो, की महिमा का सिक्का मान रहा है. इस देव भूमि पर प्रकृति के दृश्यों को देखकर जिस प्रकार मुझमें उस परवरदिगार का ख्याल जोर पर है शायद इसीलिये ऋषियों ने जैसे वशिष्ठ आदि ने इस देव भूमि को अपनी मानसिक और आत्मिक शक्ति को बढ़ाने को उपयुक्त समझा हो और किसी समय ऋषिगण यहाँ तपस्या करते हों. इन ऋषियों के संस्कार साइंस के नियम के अनुसार यहाँ रहने चाहियें और हैं. यहाँ के निवासी चोरी-चारी नहीं करते. सीधे-सादे, भोले-भाले मालूम होते हैं. यद्यपि समय बदल गया किन्तु अब तक भी किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष रूप से या सूक्ष्म रूप से प्रभावित हैं.

मेरा विषय था --समझे का मत न्यारा है और आत्मतत्त्व को विचारना है. मेरी आयु इसी ख़ब्त में व्यतीत हुई. यह आत्म तत्त्व क्या निकला? मन का तत्त्व तो मैंने समझ लिया कि इस संसार का यह सब खेल माया का है. बुराई, भलाई, धर्म-कर्म, पाप-पुण्य, प्रेम, भक्ति, दुराचार, सदाचार यह सबका सब माया है. दाता की दया ने मुझे माया से निकाल दिया यद्यपि अभी माया में रहता हूँ मगर माया में रहता हुआ अमाया हूँ, निर्लिप्त हूँ. मैं न देह हूँ न मन हूँ किन्तु प्रकाश या शब्द स्वरूप आत्मा हूँ. इस अवस्था के प्राप्त होने पर सिवाय इसके कि जब तक उस अवस्था में हूँ आनन्द ले लूँ और मेरी समझ में कुछ नहीं आया अथवा किसी भूले-भटके हुए मनुष्य को जो इस संकल्प यानी मन माया के चक्र में आया हुआ है और वह इस चक्र से दुखी है उसको इस मन, माया या संकल्प की दुनिया की असलियत बता कर कुछ शान्ति दिला दूँ. बाकी सचाई पसन्द मनुष्य होते हुए पाखंड जाल से अलग रहता हुआ कहता हूँ कि ऐ मानव! तेरे दुख-सुख, तेरी कल्पनाओं या तेरे अपने ही संकल्पों के परिणाम हैं, मगर मुझको यहाँ आकर संतुष्टि नहीं होती. मेरी अन्तर की सुरत जो शारीरिक और मानसिक बोध-भान से अलग रह कर आत्मा का आनन्द लेती है वह कुछ और भी चाहती है. इसलिये इस बुढ़ापे में शब्द और प्रकाश अर्थात् आत्म

अवस्था में रहता हुआ इसके आगे खोज करता रहता हूँ. चूँकि खोज करते समय शब्द और प्रकाश के सिवाय कुछ वस्तु है नहीं, यद्यपि वह शब्द और प्रकाश निर्मल और शुद्ध होता है, परन्तु उसका अन्त नहीं मिलता इसलिये मैं इस अवस्था को अलख कहता हूँ. इस अवस्था का अनुभव करते हुये मैंने यह समझा कि एक तत्त्व है और वह गति में रहता है. इसी से सब रचना होती है. अनादि काल से चली आ रही है. कब तक रहेगी मेरा अनुभव नहीं समझ सकता. इस अवस्था को अगम कहते हैं. मैं ऐसा समझता हूँ. कभी इस अवस्था में लय होता हुआ सब कुछ भूल जाता हूँ. न अलख का बोध रहता है न अगम का और न सत का. इस सब कुछ भूल जाने का नाम अनामी है. जब चेतन्यता आती है सोचता हूँ कि राधास्वामी दयाल ने अलख और अगम के बड़े-बड़े लोक वर्णन किये हैं जिनको यह कहते हैं अपार हैं. चूँकि मैं वाणी के अनुसार इस सत, अलख, अगम को देखना, समझना चाहता आ रहा हूँ, यह सहसदल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न भंवरगुफा आदि संतमत के योग के स्थान का अनुभव तो पूरा हो गया. ये श्रेणियां सचमुच जिस तरह मेरे अन्तर छोटे पैमाने में हैं, अनुभव की दृष्टि से ऊपर भी हैं. क्या आश्चर्य कि स्वामीजी ने इस अनुभव की दृष्टि से इन सत, अलख और अगम आदि का साक्षात्कार किया हो. मैं यह अनुभव करता रहता हूँ मगर अभी इतना अनुभव नहीं हुआ कि मुझे इस तरह से इस अलख और अगम से सन्तुष्टि आये जिस तरह निचली श्रेणियों से मुझे सन्तुष्टि आई है. अब निचले दर्जों का तो ख्याल ही मेरे दिमाग़ में नहीं आता जैसे अब बुढ़ापे में जो खेल मैंने बचपन में किये अथवा बचपन में जो मेरे विचार थे उनका मुझे ख्याल तक नहीं आता. कई बार सुरत इस सत, अलख, अगम के अनुभव से भी उपराम हो जाती है मगर अभी पूर्णतया उपराम नहीं हुई. जब अकेला होता हूँ सुरत तुरन्त ऊपर चली जाती है. मैं यह जानता हूँ कि मेरे इस अनुभव की जन साधारण को आवश्यकता नहीं है किन्तु मैं इस प्रकार की बातों को पढ़ कर इस ओर खिंचा था अतः यह सोच कर कि दूसरे लोग भी मेरी तरह इस ख़ब्त में हों उनको बता जाऊँ कि मेरी समझ में क्या आया है. इस कहने की आवश्यकता इसलिये भी समझता हूँ कि ये जितने सम्प्रदाय तथा पंथ हैं ये रोचक और भयानक तरीके से जन साधारण को अपने पीछे लगाते हैं जिस तरह मनीकर्ण की घटनायें वर्णन की गई हैं. हिन्दू अपना हक़ जताते हैं और सिख अपना हक़ जमाते हैं. परिणाम सबके सामने है, जैसे मानव जाति का भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय में बँट जाना, परस्पर घृणा का पैदा होना.

अपना आपा क्या है? मनुष्य न तो ख़ुदा या ईश्वर ही है न ब्रह्म है न कुछ और है. यह अस्तित्व के क्षोभ में एक छोटी सी किरण है. यह किरण इस प्रकृति, देह, मन और आत्मा में रहती है जिससे इसका यह मानव शरीर स्थित है. यह यदि समझ-बूझ से काम ले तो यह प्रकृति की दिव्य शक्तियों को अपना कर अपना शारीरिक, मानसिक और आत्मिक जीवन बेहतर बना सकता है. इसलिये सन्तों ने अपने आपको जानने और पहचानने का सन्देश दिया. अपना रूप कि हम किरण हैं समझते हुये जब तक दुनिया में हैं सुख-शान्ति से जीवन गुजार सकते हैं.

4. सत-अलख-अगम-अनाम

(मनीकर्ण 27-06-1967)

मैंने तीन लेख सत, अलख, अनाम और अगम के विषय पर पं. मोहनलाल को लिखवाये. आज उन्होंने कहा कि ऊपर के लोकों या स्थानों में क्या कैफ़ियत होती है उसके बारे में प्रकाश डालिये.

---मास्टरजी! जीवन कुछ चाहता अवश्य है. किसी वस्तु की खोज करता है. कोई इसे मालिक की

तलाश कह देता है, कोई अपने आपकी खोज. यह दुनिया है. शारीरिक जीवन से बेपरवाह होकर मैंने मानसिक जीवन का अनुभव किया. संकल्प की दुनिया से ऊपर जाकर आत्मिक जीवन का अनुभव किया. इससे परे अपने व्यक्तित्व (आत्मपन) को छोड़ कर पूर्णता का अनुभव करता आ रहा हूँ, जिसको मैं पूर्णता का देश (कुल्लियत) कहता हूँ, वह शब्द और प्रकाश का मंडल है. उसे राधास्वामी मत में दयाल देश कहते हैं, गीता का भाव चौथे पद से है. क्या पता कि यह भी अपने ही अस्तित्व का खेल हो. शरीर के त्याग के बाद क्या होगा मालूम नहीं, शारीरिक मानसिक और आत्मिक जीवन के जितने भान-बोध हैं ये सब भान-बोध वहाँ कारण रूप में या सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में मौजूद रहते हैं. उनके होने के भान-बोध का नाम निर्मल चैतन्य की अवस्था है अर्थात वहाँ चेतन्यता है मगर इसमें स्थूलता, सूक्ष्मता या कारणपने का प्राकट्य नहीं रहता. उसके अन्तर अर्थात सत, अलख, अगम में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार कारण या बीज रूप में मौजूद हैं. अस्तित्व 'हैपना' यानी निर्मल चेतनता वहां है. मैं ऐसा महसूस करता हूँ. साधारण बुद्धि वाले भी सोच सकते हैं कि आम की गुठली में जिस तरह आम के पौधे का वृक्ष, तना, शाखा, फूल, फल और फल की मिठास सब कुछ उसमें मौजूद है, इसी तरह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भान-बोध, मैं महसूस करता हूं, वहां भी मौजूद हैं. जब उस अवस्था से अभिव्यक्ति होती है या वह अवस्था अभिव्यक्ति (ज़हूर) में आती है तब आत्मा में आकर इसकी अभिव्यक्ति (ज़हूर) होती है और फिर वही अभिव्यक्ति (ज़हूर) मन में आती है और फिर वही देह में आती है.

प्रश्नः-इस दयाल देश में या सत, अलख और अगम में यह काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार कैसे रहते हैं?

उत्तरः-अहंकार कहते हैं अहंकार---अहंपने को, अपने चिह्न को. जाग्रत में हम अपने 'मैंपने' को स्थित रखते हुये जब वह मैंपना दृढ़ हो जाता है तो उसका व्यवहार करते हैं. इसी तरह वहां हमारी सुरत के अस्तित्व का स्थित रहना अथवा हमारे चेतनपने का बोध रहता है. चूंकि मुझ में मौजूद रहता है, इसलिये मैं उस अपने चेतनपने, निर्मल चेतनपने को वहां का अहंपना समझता हूँ. यदि वहां का अहंपना कारण रूप में न होता तो नीचे आत्मा, मन और शरीर में आकर अहंकार होता ही नहीं.

मोहः-इस दुनिया में मोह कहते हैं दिली लगन की गहरी हालत को. मेरे अनुभव में उस पूर्णता की अवस्था में भी सुरत के अन्तर किसी वस्तु या किसी अज्ञात शक्ति की ओर घनिष्ठ भाव (जज़्बा) मौजूद रहता है जिसका नाम सन्तों ने भक्ति रखा हुआ है. स्वामी जी का कथन हैः-

भक्ति सुनाई सब से न्यारी,वेद कतेब न ताहि बिचारी.

लोभः- लोभ कहते हैं किसी वस्तु के प्राप्त करने की लालसा को. वहां भी चूंकि सुरत के अन्तर एक खिंचाव रहता है उस खिंचाव को मैं समझता हूं कि महाकारण रूप में लोभ या चाह है, यद्यपि उस चाह का रूप महासूक्ष्म होने के कारण बदला होता है.

क्रोधः- जब मनुष्य की वासना किसी लगाव या आसक्ति की वस्तु की पूर्ति को धक्का लगता है या उसका विरोध होता है तो वह जाग्रत में उसको दूर करने, उससे अलग होने या उसका सामना करने को विवश होता है. इस विवशता या मजबूरी के भाव का नाम क्रोध है. मेरी सुरत को जब इन ऊपर के लोकों या दयाल देश में उस चेतन या निर्मल चेतन से किसी कारण से साधन के समय उत्थान होने लगता है सुरत उस उत्थान को त्यागने का भाव उत्पन्न करती है. दूसरे शब्दों में वह उत्थान

नहीं चाहती. इस भाव को मैं क्रोध की कारण से कारण अवस्था समझता हूँ.
काम:- काम कहते हैं कामना को, वासना को. इस स्थान पर किसी उद्देश्य, ग़र्ज़ या इच्छा के वशीभूत सुरत में उस स्थान के निर्मल चेतन का आनन्द लेने की इच्छा मौजूद है या इच्छा का भाव मौजूद है इसलिये वहां भी काम सूक्ष्म से सूक्ष्म दशा में मौजूद है.
प्रश्न:(मा. मोहन लाल)-समस्त सम्प्रदाय तथा पंथ काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के त्यागने की राय देते हैं. आप उलटी गंगा बहाते हैं. इसकी व्याख्या कीजिये.
उत्तर:- काम, क्रोध, मोह, आदि को त्यागने का जो आदेश है वह जाग्रत अवस्था में इनके स्थूल रूप को त्यागने से अभिप्राय है और साधन के समय सूक्ष्म रूप को त्यागने का नियम है. जब तक इनके स्थूल, सूक्ष्म और कारण अंगों को छोड़ा न जाएगा, वह निर्मल चेतन अवस्था आ ही नहीं सकती मगर ये बातें अस्तित्व में, चाहे वह पूर्णता का अस्तित्व (हस्ती-ए-कुल) है या आत्मा का अस्तित्व है या संकल्प का अस्तित्व है अथवा शरीर का अस्तित्व है, मौजूद रहती है. रचना में जहां और भी रचना है :-भूर् लोक, भुवः लोक, स्वः लोक, महः लोक, जनः लोक, तपः लोक, इन वस्तुओं की अभिव्यक्ति (ज़हूर) रहती है, अन्तर केवल कारण, सूक्ष्म और स्थूल का है.
स्थूलता और सूक्ष्मता में आनन्द के साथ बे-आनन्दपन भी आ जाता है. उस बे-आनन्दपन को दूर करने के लिये स्थूलता और सूक्ष्मता का त्यागना आवश्यक है. इसलिये धर्मसंप्रदाय भी ठीक कहते हैं कि इन स्थूलता और सूक्ष्मता के अंगों को छोड़ना चाहिये मगर यह हमारा शरीर संकल्प की दुनिया से बनता है. संकल्प की उत्पत्ति प्रकाश, आत्मपद या ब्रह्मपद से होती है और प्रकाश या ब्रह्म की उत्पत्ति सत् से होती है जो पूर्णता का अस्तित्व (हस्ती-ए-कुल) है. जितने लोक हैं ये इस पूर्णता के प्रतिबिम्ब हैं, अक्स हैं. यही बात संत कबीर ने अपने शब्द में कही है. उनका शब्द है :-'कर नैनों दीदार पिंड से न्यारा है'. और भी ऐसे शब्द हैं. इन शब्दों से रचना के सिलसिले में हर एक लोक में उन्होंने लिखा है कि वह ऊपर के लोकों का प्रतिबिम्ब है! जो ऊपर है वही इनमें भी है. कबीर शब्दावली में इनको देखा जा सकता है.
प्रश्न :(मा. मोहनलाल) -यह बात मेरी समझ में आ गई कि एक पूर्णता का अस्तित्व है जिसकी यह सब अभिव्यक्ति है वही नीचे के लोकों में है. जब सब कुछ यहीं है तो फिर हम क्यों व्यर्थ सरदर्दी लेकर साधन, अभ्यास, योग, जप-तप की ओर ध्यान दें. वह आप अस्तित्व ही खेल कर रहा है.
उत्तर:- इस पूर्णता के अस्तित्व से जिसमें सब कुछ पूर्ण रूप में मौजूद है, उसकी अभिव्यक्ति स्वाभाविक होती है और रचना बनती है. चूंकि उस पूर्ण की शक्ति यहां आती है, समय पर हर वस्तु की प्रलय है. जो उपजता है वह नाश होता है. इसलिये हर एक किरण, सुरत जो वहां से अभिव्यक्ति (जहूर) के सिलसिले में आई है जब अभिव्यक्ति (आत्मा, मन और देह, जो अभिव्यक्ति के रूप हैं) का समय समाप्त होने का शुरू हो जाता है तब विवश होकर सुरत को इनसे वैराग पैदा हो जाता है. हर एक अस्तित्व जो बना है वह टूटेगा. शरीर को भी नाश होना है, मन को भी नाश होना है, आत्मा को भी नाश होना है मगर पूर्ण का अंश जो इसमें रहता है उसका नाश नहीं होता. जो पिंडे सो ब्रह्मंडे. ब्रह्मांड को भी नाश होना है. स्वामी जी (राधास्वामी दयाल) ने उत्पत्ति और प्रलय के सिलसिले में स्पष्ट रूप से लिखा है कि काल का भी नाश है. यदि अमरपना शाश्वत (दायमी) है तो केवल पूर्णता के अस्तित्व में है. यह रचना अनादि है. अनादि से मेरा

अभिप्राय यह नहीं कि यह पृथ्वी अथवा चन्द्र सूर्य भी अनादि हैं. उस पूर्णता के अस्तित्व से अभिव्यक्ति (जहूर) होती रहती है. इसकी एक-एक किरण से करोड़ों तारागण, चन्द्र, सूर्य तथा दुनिया बनती रहती है और बिगड़ती रहती है. यहां लाखों प्रकार की ऐसी पृथ्वी हैं. करोड़ों सूर्य हैं. करोड़ों तारागण हैं. समय-समय पर कभी किसी सूर्य का अन्त हो गया, कोई दूसरा उत्पन्न हो गया. यह पृथ्वी गई, कोई दूसरी पृथ्वी आ गई. यह दुनिया कल्प कल्पान्तर से है जिसका न आदि है न अन्त. यह मेरा अनुभव है.

मेरा ऐसा होना, रिसर्च करना कुदरती है. मालूम नहीं यह मेरी किरण या सुरत कितने जन्म जन्मांतरों से गुजरती हुई मानव शरीर में आई है. आगे भी क्या पता है कि मैं या मेरी सुरत सदा-सदा के लिए पूर्ण में विलय होगी या नहीं या और जन्म लेने पड़ें, यह मौज के अधीन है. मेरा आपका या तमाम जीव जन्तुओं का जो खेल है यह सब उस मौज के अधीन है. मैं ऐसा समझता हूँ.

प्रश्न (मा. मोहन लाल) :-जब यह दशा है तो हमारा पुरुषार्थ प्रयत्न और उपाय उस पार जाने के लिए सब व्यर्थ हैं.

उत्तर:- नहीं! जिसका समय आ जाता है उसके अन्तर यह भाव उस पार जाने का स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है. वह पुरुषार्थ या प्रयत्न करने के लिये विवश है. उसके वश की बात नहीं. यह मेरा अनुभव है जो कुछ मैं करता हूं, सोचता हूं यह सब मुझसे कराया जा रहा है. यह खेल ऐसा आकर्षक है कि बुद्धि काम नहीं करती. जाने या अनजाने मौज हमको घसीटे लिये जा रही है. कहना, सुनना, करना सब उसी के अधीन है.

प्रश्न (मा. मोहन लाल):- जब ऐसी दशा है तो सन्तों की महिमा क्यों गाई जाती है? और सन्त क्या कर सकते हैं?

उत्तर:- सन्त की सबसे बड़ी महिमा यह है कि उसकी संगत और रेडियेशन से मनुष्य के संशय-भ्रम दूर हो जाते हैं. मनुष्य का दिमाग कुछ चाहता है. उसके लिये अपनी चाह को पूरा करने का सही मार्ग मिल जाता है. जिनका समय आया हुआ होता है उनको स्वाभाविक रूप से कुदरती कानून के अनुसार सन्तों का मिलाप हो जाता है जैसे मुझे हुआ था. आप अपने जीवन को देखिये. अपने पिता जी के संस्कारों के कारण आपका ख्याल परमार्थ की ओर हुआ. आपकी बुद्धि चूंकि तीक्ष्ण है, प्रश्नोत्तर उठाती रहती है. इसलिये मेरा और आपका मेल हो गया.

सन्तों की दूसरी महिमा यह है कि यह सृष्टि प्राकृतिक है इसमें सब काम धारों, किरणों और रेडियेशन से होता है. जिस-जिस गुण-कर्म-स्वभाव का जो आदमी होता है उसके गुण, कर्म और रेडिएशन निकलते रहते हैं और वह इस संसार में मौजूद रहते हैं. जो-जो प्राणी उन संस्कारों के संसर्ग में आता है उसके जीवन में परिवर्तन आता है. इस ग्राम मनीकर्ण ही को ले लो. यह तपोभूमि कहलाती है. ऋषि-महात्माओं ने यहां जप-तप आदि किये हुए हैं. उनकी रेडियेशन, उनकी विचारधारा यहां मौजूद है. यही कारण है कि इन पहाड़ी क्षेत्रों में उनके संस्कार मौजूद हैं. जहाँ कोई सच्चा सन्त होता है उसकी रेडियेशन, जो उसके इर्द गिर्द रहती है जिसे औरा (aura) कहते हैं, उससे लोग लाभ उठाते रहते हैं. सन्तों का प्राकट्य स्वाभाविक हुआ करता है. संसार के सताये हुए प्राणियों का स्वाभाविक इलाज कुछ तो उनकी अपनी प्रकृति करती है और कुछ इन सन्तों की रेडियेशन करती है और जन साधारण को शान्ति मिलती है.

प्रश्न (मा. मोहल लाल) :- ऋषियों में और सन्तों में क्या अन्तर है?
उत्तर:- इसका उत्तर देना कठिन है. यदि दूँ भी तो दुनिया टेकी है और पक्षपाती है. मानेगी नहीं. मैं कहता हूं कि सन्तों का दर्जा ऋषियों से ऊंचा है. क्यों? इसी मनीकर्ण के क्षेत्र में यहां का पंडित कहता था कि भृगु, वशिष्ठ, व्यास ने यहां तप किया. ऋषि लोग शारीरिक और मानसिक अवस्था की अधिक उन्नति की सामग्री प्रदान करते थे. सन्त केवल सुरत को पूर्णता के देश अर्थात दयाल देश में ले जाने की तजवीज़, तदबीर और सुगम से सुगम विधि बताते हैं. सन्तों के यहां शारीरिक और मानसिक अवस्था की ओर से वैराग दिलाया जाता है और जीवन की शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं को भली-भाँति चलाने के लिये सुगम से सुगम युक्ति और उपाय बताये जाते हैं ताकि मनुष्य का अधिक समय शारीरिक और मानसिक उन्नति तथा सुधार में ही न लग जाय.
प्रश्न (मा. मोहन लाल) :- क्या इसका कोई प्रमाण है कि सन्त ऋषियों से ऊंचे होते हैं?
उत्तर:- इस क्षेत्र में पंडित जी के कथनानुसार भृगु ने तप किया. भृगु ने 'भृगु संहिता' तैयार करके कर्म कांड या कर्मों के फल से बचने का उपाय बताया. वशिष्ठ जी ने 'योग वाशिष्ठ' लिखकर राम के वैराग्य को दूर करके संसार की मर्यादा रखने और संसार का भार उतारने की शिक्षा दी. व्यास जी ने जीवन के हर पहलू पर दृष्टि डालने के लिये अनेक ग्रन्थों की रचना की. यदि सच पूछो तो संसारी लोगों को ऋषियों की शिक्षा ही बेहतर है. मैं पक्षपाती नहीं हूँ. सन्तों का मार्ग निवृत्ति मार्ग है. मेरी ओर देखो. मैं निवृत्ति मार्ग का पैरोकार हूं मगर संसार की बेहतरी की दृष्टि से 'मनुष्य बनो' की आवाज़ उठाई यद्यपि निवृत्ति मार्ग इंसानियत के बाद आता है मगर जन साधारण या पब्लिक को निवृत्ति मार्ग की आवश्यकता नहीं है इसलिये मेरी इच्छा यह है कि समस्त ऋषियों जिन्होंने मानव जाति की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अवस्था को सुधारने के लिये भिन्न-भिन्न उपायों से काम किया, उनकी शिक्षा एक इन्सानियत के घेरे में लाकर मानव जीवन के सिद्धान्त सादा, स्पष्ट और सुगम बनाये जाएं ताकि इन ऋषियों की विभिन्न शिक्षा के कारण जो द्वेष और भिन्नता (ग़ैरियत) है वह समाप्त हो जाय. ऋषियों की शिक्षा में ग़लती नहीं है. लोगों ने उनकी वाणी के शब्दों तक ही अपने को सीमित रखा. उदाहरण रूप में जिन ब्राह्मण के घर में हम ठहरे हुए हैं उन्होंने अपने दादा या परदादा का लिखा हुआ एक ग्रन्थ बताया. उन्होंने श्लोक लिखे हैं जिनका भाव यह है कि यह धर्म स्थान मनीकर्ण बहुत उन्नति करेगा. मगर जिनके यहां हम ठहरे हैं वे कहते हैं कि हम कुछ उन्नति न कर सके. जो भविष्यवाणी उनके दादा परदादा ने की है वह तो सत्य है. मौजूदा पंडित उनके भाव को न समझ सके. यह स्थान तो उन्नति करेगा. पर्यटकों के आने-जाने और ठहरने का गवर्नमेंट प्रबन्ध कर रही है. पहले से अधिक आदमी आते हैं. इसी प्रकार ऋषियों के वाक्य सब सत्य हैं. भविष्यवाणियाँ ग़लत नहीं हैं. हम लोग निजी स्वार्थ या साम्प्रदायिक या पांथिक पक्षपात के कारण असलियत को नहीं समझ सकते. मैंने मानवता (इन्सानियत) का शब्द उठाया. कलियुग के बाद सतयुग का आना अनिवार्य है. यह वह दौर है जहां कलयुग के अन्तर सतयुग का दौर आने वाला है. सतयुग में जाति, दान, धर्म, कर्म नहीं होते मनुष्य केवल ध्यान शक्ति से आनन्द और शांति लेता है. इसलिये कुदरत ने मेरे दिमाग को हिलाया और मैंने इस आगे आने वाले सतयुग के लिये, जो कलयुग के बीच सतयुग का हिस्सा आयेगा, मानवता की पुकार कर चला. मैंने संसार को अपनी बात सुनाने के लिये अपने आप को संत सतगुरु वक्त कहा

है और मानवता की नींव 'मानवता मन्दिर' के रूप में और अपने काम के रूप में छोड़े जा रहा हूँ. यही दाता दयाल महर्षि शिव की आज्ञा थी कि निबल, अबल और अज्ञानी जीवों की सहायता और जगत कल्याण के लिये काम करना. साथ ही यह भी कहना था कि धार्मिक शिक्षा में परिवर्तन कर जाना. वह परिवर्तन कर दिया. अध्यात्मिकता (रूहानियत) जो पेचीदा समस्या बनी हुई थी उसे सुगम रूप में वर्णन कर दिया.

प्रश्न (मा. मोहल लाल) :- पिछले संतों ने इतनी स्पष्टता से काम नहीं लिया. क्यों?

उत्तर:- अधिकार और संस्कार को दृष्टि में रखा गया. जिन संतों को निजी ग़र्ज़ थी, अपने पंथ को चलाने या स्थित रखने की ग़र्ज़ थी अथवा मान बड़ाई या लोभ का ख्याल था, उन्होंने पर्दा रखा. अब शिक्षित वर्ग की बुद्धि तीक्ष्ण है पुरानी वर्णन शैली को गलत समझा जाता है, इसलिये शिक्षा में परिवर्तन करने में मसलहत है. समय आ रहा है जब कलियुग के प्रभाव से तबाही के बाद जनसाधारण इस मनुष्यता के सिद्धांतों को अपनायेगा. और कोई चारा नहीं रह गया. अब रहा आत्मिक या चौथा पद या दयाल देश, उसके अधिकारी बहुत थोड़े हैं और भविष्य में और थोड़े रहेंगे.

प्रश्न (मा. मोहन लाल) :- आपने जो कहा है वह ठीक है मगर यह भी हो सकता है कि ऋषियों ने अधिकार न समझ कर दुनिया वालों को परमार्थ की ऊंची शिक्षा न दी हो और वे संत ही हों.

उत्तर:- हां ठीक है. मुझे ही देखो. मैं अपने तईं निवृत्ति मार्ग का पैरोकार हूं लेकिन मैं जन साधारण को नाम दान नहीं देता क्योंकि मैं समझता हूं कि ये अधिकारी नहीं हैं. निवृत्ति मार्ग की शिक्षा आम पब्लिक की वस्तु नहीं है और न देनी चाहिये. संत और सत्गुरु में अन्तर है. एक सन्त सत्गुरु वक्त होता है. इन तीनों में अन्तर होता है. ऋषि वे होते हैं जो संसार में शारीरिक और मानसिक जीवन की उन्नति और सामाजिक एकता की शिक्षा देते हैं. सामाजिक एकता में शिक्षा समयानुसार हमेशा बदलती रहती है मगर मानसिक और आत्मिक अवस्था की शिक्षा एक ही होती है यद्यपि शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिये देश, काल और वस्तु के अनुसार उपाय और विधि अलग-अलग होते हैं. सन्त वह है जो अपने रूप में स्थित रहता है. वह रूप वही है--- सत, अलख, अगम की अवस्था. वह उस पर हमेशा रहती है. सन्त सत्गुरु वह है जो इस अवस्था अर्थात अलख, अगम या दयाल देश की अवस्था प्राप्त करने को दूसरे आदमी की प्रकृति और परिस्थिति को देखकर उपाय और ढंग बताता है. यह उपाय और ढंग हमेशा भिन्न-भिन्न होते हैं. संत सत्गुरु वक्त वह होता है जो समयानुकूल शिक्षा को बदल जाता है जिससे आम पब्लिक में एकता और प्रेम भी स्थापित हो और वह इस सत अलख, अगम गति को भी प्राप्त कर सकें. किसी आदमी के विषय में कोई खास राय कायम करना कठिन है. उनके वचनों से हम अनुभव करते हैं. मैं स्वयं यह समझता हूं कि हिन्दू शास्त्रों का जितना कथन है सबमें सचाई है. निवृत्ति मार्ग के ख्याल से वेद व्यास ने 'गरुड़ पुराण' लिखा. गरुड़ पुराण के कथन में और संतमत की शिक्षा में कोई भेद नहीं है. मैंने जो 'गरुड पुराण रहस्य' लिखा है उसमें इस बात को सिद्ध कर दिया. इसलिये हो सकता है कि प्राचीन महापुरुष संत पदवी वाले और संत सत्गुरु वक्त भी हों. मैंने इन समस्त भेदभावों को दूर करने के लिए शिक्षा को बदल दिया. शब्दों के जाल को तोड़ दिया नाम की बजाय शब्दब्रह्म कह दिया. प्रकाश के बजाय परब्रह्म कह दिया. मानसिक निर्विकल्प समाधि का नाम शुद्धब्रह्म कह दिया. मानसिक और शारीरिक उन्नति के लिये ज्योति स्वरूप, सहसदल

कंवल, त्रिकुटी आदि के लिये सबल ब्रह्म का नाम बता दिया, ताकि शब्दों के जाल में फंसकर जो मानव जाति बंटी हुई है उसमें एकता और प्रेम हो. साम्प्रदायिक पक्षपात दूर हो. यद्यपि मेरे विचारों की व्याख्या हर एक आदमी नहीं समझ सकता मगर मेरी आत्मा को हर पहलू से सन्तुष्टि है.

5. सत-अलख-अगम-अनाम

(कुल्लू 2-4-67)

कुल्लू की घाटी में मौज ले आई. यह देव भूमि है. यहां के वातावरण और प्रकृति का संस्कार, कुछ अपने जीवन की खोज का परिणाम कहाँ ले आया! उस मालिक की खोज के सिलसिले में जो अनुभव हुए, वह मुझे शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भान-बोध को छोड़ने को विवश करते थे. इनको छोड़ने के बाद प्रकाश और शब्द बाकी रहा जिसको दयाल देश कहते हैं. प्रकाश और शब्द को जो वस्तु अपने अन्तर देखती है और सुनती है वह लाजिमी तौर पर प्रकाश और शब्द से एक पृथक वस्तु होनी चाहिये. उसकी खोज करता हुआ चलता हूँ तो एक ऐसी दशा छा जाती है या ऐसी अवस्था होती है जहां न प्रकाश है न शब्द है, न आनन्द है न मस्ती है और न हस्ती (हैपने) का बोध है. आज सुबह यही दशा थी. फिर चेतन्यता आई. उत्थान हुआ. सोचता हूं कि मुझे क्या हो गया. फिर दाता दयाल का शब्द यह आया;-

मंगलम् गुरु शब्द रूप, अनाम नाम प्रकाशनम्, मंगलम् शब्दार्थ शब्दाधार, शब्द निवासनम्.
गुप्त अपने आप में जब, अलख अगम अनाम आप,जब प्रगट आनन्द ज्ञानाकार, अरु सतधाम आप.
साज सन्त समाज मंगल, काज जीव उद्धार को,आपने धारण किया है, परम सन्त अवतार को.
आप हैं आधार सबके, आपके आधार सब, वार पार से रहित आप हैं, और वारापार सब.
संग देकर सत का सतसंगत में जीव अधीन को, सिंध सदगति से मिलाया, जीव रूपी मीन को.
सैन बैन का आसरा, सतसंग द्वारा दान दे, शब्द योग सिखाया अनहद, धाम पद निर्वाण दे.
धन्य सतगुरु राधास्वामी, पार भव से कीजिये,भक्ति, मुक्ति योग युक्ति, ज्ञान शक्ति दीजिये.

इस शब्द से विश्वास हो गया कि वह मालिक जिसकी खोज मैं बचपन से करता आ रहा हूँ, वह वह अवस्था है जिसका मैंने अनुभव किया है. उसी अवस्था से मेरे अन्तर से शब्द और प्रकाश पैदा होते हैं और शब्द और प्रकाश के पैदा होने के समय आनन्द और ज्ञान का मुझे बोध होता है. जब इससे ऊपर होता हूं तो न आनन्द, न ज्ञान न सतधाम (अपने अस्तित्व का बोध) ही रहता है.

दाता दयाल महर्षि शिव को मैंने परम तत्त्व का अवतार बचपन से ही माना था यह मेरा मानना सच्चा सिद्ध हुआ. उस परम तत्त्व या ज़ात ने शिवव्रत लाल का रूप धारण कर के मेरे जैसे जिज्ञासु को अपनी शरण में लेकर इस मंजिल तक पहुँचाया. शायद इसी ख्याल से राधास्वामी मत या सन्त मत में ऐसे पुरुष को मालिक का ही रूप मानकर उसकी पूजा, उसका सत्संग तथा उससे प्रेम करने का आदेश हो. रेडियेशन का नियम काम करता है. दाता दयाल का संस्कार या दिया हुआ नाम दान आज मेरे लिये लाभप्रद हुआ. क्या लाभ हुआ?

संग देकर सत का सतसंगत में, जीव अधीन को,सिंध सदगति से मिलाया, जीव रूपी मीन को.

हर एक जीव उस गति से ही आया है. अपने अज्ञान और भ्रम में कभी उसने पत्थर को ईश्वर समझा, कभी चन्द्र-सूर्य को मालिक माना, कभी सृष्टिकर्ता ईश्वर की पूजा की और कभी ब्रह्म और माया का पुजारी बना. जब तक वह किसी दूसरे को कुछ मानकर उसकी उपासना करता है, उससे प्रेम करता है, यह अपने असल स्वरूप में विलय नहीं हो सकता. इसका अनुभव मुझे नहीं होता

था. केवल सत्संगियों के अनुभवों से प्राप्त हुआ. आँख खुल गई कि जब मैं किसी के अन्तर नहीं जाता तो सिद्ध हुआ कि वे सत्संगी अपने ख्याल, विश्वास के या उनके अन्तर से जो वृत्ति निकली है, उसके पुजारी हैं. इस ख्याल ने असल मालिक की खोज करने को विवश किया. दाता दयाल इस भेद को, जिसको मैंने खोलकर बताया है, खोल कर नहीं कहते थे किन्तु इशारा करते थे जिसको मैं समझ नहीं सकता था. मैंने समझा कि सैन-बैन को छोड़ दूँ और इस गुप्त रहस्य को स्पष्ट करके बताऊँ मगर इस स्पष्टता से उन लोगों का नुकसान भी है जो उस सच्चे मालिक या निज स्वरूप से मिलने के अभिलाषी हैं क्योंकि मुसाफिर को यदि यात्रा में दिलचस्पी नहीं, मनोरंजन नहीं तथा यात्रा में कोई साथी नहीं तो यात्रा कठिन हो जाती है. मैं कुल्लू में आया. एक दिन एक ओर की सैर की. दूसरे दिन दूसरी ओर इच्छा हुई. तीसरे दिन एक और ओर गये. इसी तरह से सैर का आनन्द लिया. साथ में मा. मोहन लाल, मामचन्द और भंडारो देवी हैं. यह यात्रा अच्छी कटी. इसी प्रकार इस अन्तर का जो पंथ है अथवा आत्म अनुभव का मार्ग है इसमें यदि साथ नहीं और नित नया मनोरंजन नहीं और कोई साथी नहीं तो साधन या अभ्यास आनन्ददायक नहीं रहता. यात्री या पंथाई को अन्तर में किसी का साथ होना चाहिये. वह साथ क्या है? भक्ति, मुक्ति, गुरु मूर्ति, योगयुक्ति और ज्ञान प्राप्ति की भावना या इच्छा जब तक पंथाई को न होगी वह इस अन्तिम पद में पहुँच नहीं सकता. सम्भव है कोई पहुँच जाय मगर उसकी यात्रा आनन्ददायक नहीं रह सकती जिस प्रकार यह मेरे लिये दुनियावी मानसिक और आत्मिक जीवन नीरस हो गया है. मेरे जीवन में प्रेम, भक्ति, योग, और विचार के क्रम में काट-छाँट रही है तभी तो जीवन यात्रा सुख, आनन्द और प्रेम से गुज़री है. इसलिये शायद प्राचीन महापुरुषों ने इस रहस्य को बिल्कुल नहीं खोला. केवल इशारा किया. अधिकारी समझ गया. वह इस एक जन्म में इष्टपद पर नहीं पहुंचा तो प्रेम, उत्साह, ज्ञान, विवेक, विचार से इस जीवन को आशावादी रखता हुआ काट गया और फिर दूसरा चोला लिया. यह भव का सागर चौदह लोक का है. भूःर् भुवः स्वः महः जनः तपः या सहस दल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भंवर गुफा या पंच कोष, अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष अथवा तलब, इश्क, मार्फ़त, इस्तगना, फ़ना. ये सब क्या हैं? भव सागर हैं. अन्तिम पद बका और बका से परे निज स्वरूप है. मैं भाग्यशाली पुरुष हूँ. न जाने कितने जन्मों से इसी धुन में रहा हूँ. दाता की दया है कि अपने आदि का पता मिल गया. मैंने इस स्पष्ट रूप से अथवा खुले शब्दों में वर्णन तो कर दिया मगर समझेगा कौन! केवल वही जो अधिकारी है!

यह काल का चक्र है. इससे निकलना कठिन है. रेडियेशन के सिद्धान्त को, जिसे मैं सच समझता हूं यदि ठीक है तो मेरे जैसे मनुष्य की संगत तथा दर्शन से मनुष्य को एक प्रकार की शान्ति और मेरी बातों के सुनने और गुनने से निर्भ्रान्ति आनी चाहिये. इससे मुझे अहंकारी न समझा जाय. यह तो स्वाभाविक बात है. जो जैसा है उससे वैसी ही रेडियेशन निकलती है. सूर्य का स्वभाव गर्मी देना है. इसी ख्याल से मैंने यह सत्संग का सिलसिला चालू रखा हुआ है. मुझे स्वयं सत्संगियों से बहुत कुछ प्राप्त हुआ. लेना-देना परस्पर हुआ करता है. यह न समझा जाय कि गुरु लेता ही है. देता कुछ नहीं हैं. वृक्ष बाहर से कार्बन डाइऑक्साइड लेता है और उसके बदले में ऑक्सीजन देता है इसी प्रकार मेल-मिलाप से जीवन शांतिपूर्वक व्यतीत होता है. जब तक यह चोला है सत्संग कराता हूँ. यही बात दाता दयाल महर्षि शिव ने कही है:-

संग देकर सत का सतसंगत में, जीव अधीन को, सिन्ध सद्गति से मिलाया, जीव रूपी मीन को.
मेरे लेख केवल उन लोगों को जो त्रिकुटी में अभ्यास करते हैं बहुत लाभप्रद हो सकते हैं. ये लेख सत्गुरु ही का काम करते हैं मगर केवल साधुओं को. साधु वह है जो त्रिकुटी में अभ्यास करता है. स्पष्ट शब्दों में जो किसी रूप को अपने अन्तर बनाकर मन को ठहरा सकता है. चूँकि मेरे लेख तथा विचार सूक्ष्म और ऊँचे होते हैं, वह नहीं समझ सकते जिन के मन निश्चल नहीं हैं. इस लिये मैंने कहा है कि मेरी विचारधारा केवल उनको लाभप्रद है जो अपने मन को किसी भी तरीके से, किसी भी काम अथवा किसी भी ख्याल से अपने अन्तर में एकाग्र कर सकते हैं. दूसरों की समझ में आना कठिन है. हां, कोई व्यक्ति कुछ दिनों सत्संग करे, सत्संग भी ऐसा कि सत्संग में बैठकर ध्यान से केवल एक मेरे बाहरी रूप को देखता रहे और ध्यान देकर वचनों को सुनता रहे तब सम्भव है कि गूढ़ रहस्य को समझने के योग्य हो.

6. जीवन क्या है?

(कुल्लू 4-7-1967)

क्या कहूँ! जब से यह पूर्ण निश्चय हुआ है कि जितने संकल्प-संकल्प, भाव-विचार, रूप-रंग जो मेरे अन्तर उत्पन्न होते हैं ये माया हैं, कल्पित हैं, तब से दिमागी हालत बदल गई है. कोई समय था जब इस माया की कल्पित अवस्था में आया. मैं हर एक विषय पर सोचता था, समझता था, अनुभव करता था. वह दशा समाप्त हो रही है. सहस दल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न आदि (जो साधन के स्थान अन्तर में हैं) ये क्या सिद्ध हुए? माया, कल्पना. अब एक लय अवस्था (महवियत), मस्ती कह लो, आनन्द कह लो, या आत्मानन्द कह लो दिमाग में छाई रहती है. बाह्य दृश्यों या बातों या वस्तुओं के प्रभाव से होश आता रहता है. तवज्जह संसार के खेल से अर्थात मन के खेल से अथवा ज्ञान-विज्ञान के खेलों से उपराम हो गई. मुझे नहीं मालूम क्या यही परिणाम मेरे जैसे जिज्ञासुओं का हुआ करता है या यह मेरे मस्तिष्क की खराबी है. एक मस्ती की हालत में खिंचता रहता हूं. उस खिंचाव में अभी भक्ति का संस्कार मौजूद है. अस्तित्व किसी वस्तु की ओर खिंचता रहता है. जब कभी होश आता है तो ख्याल आता है कि यह क्या जीवन है! क्या यह वही जीवन है जो मां के पेट में था या मां-बाप के रजवीर्य के कीटाणु के जीवन में था. कई महापुरुषों ने कहा है और लोग भी कहते हैं कि जन्मना और मरना दुख है. मैं नहीं मानता. यदि कोई यह देखना चाहे कि माँ के पेट में या वीर्य के कीटाणु की क्या दशा होती है तो मेरी समझ में यदि वह शरीर में रहता हुआ अन्तर खोपड़ी में चला जाय और देह और मन से अलग हो जाय या इनका भान-बोध भूल जाय तो जो दशा वह यहां महसूस करेगा, वही दशा मेरे अनुभव में होगी जो माँ के पेट में अथवा उस वीर्य के कीटाणु के रूप में थी. चूंकि इस अवस्था में कोई भी दुख नहीं होता है इसलिये मैं कहता हूँ कि माँ के पेट में या वीर्य के कीटाणु की दशा में जो जीवन है या होता है उसमें दुख-सुख नहीं होना चाहिये. दुख-सुख का सम्बन्ध इन्द्रियजनित ज्ञान (Sensation) में है और इन्द्रियजनित ज्ञान (Sensation) देह और मन के कारण पैदा होते हैं.
चूंकि मैं रिसर्चर हूँ और प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा इसलिये कहता रहता हूँ. अपने आप तो अब लिखा जाता नहीं, लिखवाता हूँ. एक रिसर्च अभी बाकी है कि शरीर के

स्थायी त्याग के बाद क्या हालत होती है. बहुत कुछ सोचा-विचारा कि जीवन कहां से आया. कुछ मालूम नहीं हुआ. यदि कुछ अनुभव किया कि ऊपर के लोकों से आता है तो वह अनुभव पढ़ी हुई पुस्तकों, सुनी हुई वाणियों तथा हिन्दू फिलॉसफी के आधार पर किया या समझा मगर वास्तव में उस समझ को मैं अधूरी समझता हूँ जब तक मृत्यु के बाद की अवस्था का स्वयं अनुभव न हो जाय. इस निष्कर्ष के आधार पर कहता हूँ कि आवागमन का ख्याल भी एक ख्याल है और उस समय तक रहता है जब तक मनुष्य अपने अस्तित्व को अपनी अवस्था में वापिस न ले जाय जो उसकी अवस्था माँ के पेट में या वीर्य के कीटाणु की थी. यहां आकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यहां कोई आवागमन नहीं है.

हो सकता है जो प्राणी मरते समय इस अवस्था में रहते हुए शरीर न त्यागें, वे सूक्ष्म शरीर अर्थात केवल ख्याल के शरीर में रहने के कारण आवागमन के चक्र में रहें. जीवन का क्या परिणाम हो इसको मैं नहीं जानता. जो कुछ होगा अपने कर्मभोगवश या मौज अधीन कह जाऊँगा. वह भी यदि कर सका.

7. सत-अलख-अगम-अनाम
(श्री देवीचरन के पत्र के उत्तर में)

प्रिय देवीचरन!

आपने लिखा कि 'अगम वाणी 'के लिये कुछ और लिख भेजिये. सोचता हूं कौन हूँ? क्या हूँ? कहाँ से आया? कहां जाऊँगा? क्या किया? क्यों किया? किसी शक्ति ने मुझे बना दिया, बन गया. चेत हुआ. विवेक बुद्धि बनाने वाले को ढूंढ़ने लगी. विभिन्न सम्प्रदायों, ऋषियों, साधु-सन्तों ने इस बनाने वाले के विभिन्न रूप माने हुए हैं. उन प्रभावों से प्रभावित हो कर मैं उन्हीं रूपों को अपना बनाने वाला मानकर देखने और मिलने का इच्छुक हुआ. रामायण के संस्कार से ख्याल आया कि वह इस संसार में मानव रूप में आया करता है. उससे मानव रूप में मिलने और प्रेम करने की भावना बढ़ी. एक दृश्य था जो दाता दयाल महर्षि शिव के चरण कमल में ले गया. उसको प्रेम किया. आनन्द लिया. उस पवित्र विभूति ने उस असल मालिक जिसने मुझे बनाया है, अपने अन्तर में उससे मिलने के लिये कहा. चलता रहा. दाता के रूप को अपने अन्तर में प्रकाशमय तथा आनन्दमय बना बनाकर इस जीवन में आनन्द लिया. वे मेरे इस आनन्द को अपूर्ण समझते रहे. इशारा करते रहे कि आगे जाओ, ऊपर चढ़ो. समझ नहीं आती थी आगे कहाँ जाऊँ. उन्होंने गुरु पदवी दी. जब सत्संगियों ने अपने अनुभव बताये तब समझा. जिस तरह दाता दयाल महर्षि शिव के रूप को अपने अन्तर देखकर मैं आनन्द लेता था, वे मेरे रूप को अपने में देखने और आनन्द लेने का जिक्र करते थे. चूँकि मैं वहां नहीं होता था इसलिये विवश हो गया कि यह जो कुछ मैं अपने अन्तर देखता था यह तो मैं आप ही था. वह मालिक कहां है, इस खोज में जीवन व्यतीत करता हूँ. द्वैत का भाव छूटा, अद्वैत में आया. अद्वैत में सिवाय मेरे अपने आपके और कोई नहीं मगर मेरे होने के साथ-साथ मेरे होने का भान, मेरी रेडीयेशन जो प्रकाश और शब्द स्वरूप है, वह रहती थी और अब भी रहती है. खोज समाप्त नहीं हुई. शब्द और प्रकाश मेरी अपनी ही अभिव्यक्ति (ज़हूर) है. तो जिसने मुझको और मेरी अभिव्यक्ति को बनाया है वह क्या है? कहां है? उसकी खोज में रहता हूँ. कभी-कभी एक ऐसी अवस्था छा जाती है जिस का वर्णन सत कबीर

ने इस प्रकार किया :-

कहो उस देश की बतियाँ, जहां नहिं होत दिन रतियाँ. नहिं रवि चन्द्र और तारा, नहिं उजियार अंधियारा.

नहिं तहं अगिन और पानी, गये वहि देश जिन जानी. नहिं तहं धरनि आकाशा, करे कोई संत तहं बासा.

वहां गम काल की नाहीं, तहां नहिं धूप और छाईं. न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै. सहज में ध्यान से पावै, सुरत का खेल जिहि आवै. सोहंगम नाद नहिं भाई, न बाजै संख सहनाई. निःच्छर जाप तहं जापै, उठत धुनि सुन्न से आपै. मंदिर में दीप बहु बारी, नयन बिनु भई अंधियारी.

कबीरा देस है न्यारा, लखै कोई नाम का प्यारा.

यह शब्द पढ़ लिया देवीचरन तुमने! इस अनुभव के आधार पर कि वह मालिक वह अवस्था है जहां मैं या मेरी सुरत द्वैत और अद्वैत को छोड़ कर व शब्द और प्रकाश को छोड़ कर अपनी चेतन्यता को, अपने होने के बोध को छोड़ जाती है. फिर वह मालिक क्या हुआ? अकह, अपार, अगाध और अनामी. इस अनुभव में रहते हुए जीवन की यात्रा को गुजारना मेरी समझ में अगम देश है. सम्भव है कोई और अगम देश हो उसका मुझे ज्ञान नहीं. अनुमान से दुनिया को देखते हुये विश्वास करना पड़ता है कि जिस तरह मैं इस शरीर में रहता हुआ स्थूल, सूक्ष्म और कारण प्रकृति के भान-बोध से निकल कर शब्दब्रह्म और परब्रह्म अर्थात् शब्द और प्रकाश के मंडल से गुजरता हुआ उस अपने देश का अनुभवी होता हूँ ऐसे ही इस कुल ब्रह्मांड के अन्दर वह सत्ता जो उस देश की यहाँ फिर रही है, वह भी कभी अपने देश में लौट जाती होगी और इस समस्त रचना को प्रलय होती होगी.

अब सोचता हूँ कि इस अगम देश के सन्देश देने से कुछ लाभ इस संसार के प्राणियों को हो सकता है या नहीं? अगर संसार के धार्मिक व साम्प्रदायिक दुनिया के आदमी इस बात को समझ जाएँ तो उस मालिक के नाम पर जो मानव जाति बँटी हुई है और उस बँटने से जो पक्षपात, परायापन और भेद-भाव मौजूद है इसमें कमी आ सकती है. दूसरा लाभ यह है कि जो मेरी तरह खोजी हैं उनको सीधा और सच्चा रास्ता इस अवस्था को प्राप्त करने का मिल सकता है. देवी चरन! सन्तों की महिमा बहुत सुनता आता था. ये क्या कर सकते हैं? केवल यह चूँकि वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भान-बोध और इस रचना के कर्म का ज्ञान रखते हैं, वे उस ज्ञान के आधार पर दूसरों को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक खेलों को अनुकूल बनाने के लिये सही राय दे सकते हैं. साथ ही इस चक्र से निकलने के लिये तजवीज़ और तदबीर बता सकते हैं. सम्भव है कोई दूसरा सन्त कुछ कर सकता हो अगर मेरी समझ में नहीं आता. चाहता अवश्य हूँ कि इस मृत्युलोक के प्राणी सुखी रहें, शान्त रहें. सिवाय इस इच्छा के और मैं कुछ नहीं कर सकता. सम्भव है रेडीयेशन के नियम के अनुसार दूसरों के जीवन में परिवर्तन आये.

मैंने दातादयाल की आज्ञा के अनुसार काम किया. आज्ञा थी कि निबल, अबल और अज्ञानी जीवों की सहायता करना और जगत कल्याण के लिये काम करना. अतः मैंने जो कुछ अनुभव प्राप्त किया उसके आधार पर जो सच्ची राय दे सकता था --सोशल, घरेलू, पोलिटिकल व आध्यात्मिक लाइन के लिये दे चला. यह खेल खत्म होने वाला है. होगा, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों. आये हैं सो जायेंगे राजा रंक फकीर,कोई सिंहासन चढ़ चले कोई बंधे ज़ंजीर.

अभी एक इच्छा है कि शरीर के स्थायी त्याग के बाद यदि मैं बता सका तो बता जाऊँगा कि मेरा परिणाम क्या हुआ. इस समय तक जो किया, समझा और अनुभव किया वह इस शरीर में रहते हुए ही हुआ. आगे क्या होगा मौज जानती है.

दयाल देश और पंचम देश

(परम दयाल फकीरचन्द जी महाराज का श्री देवीचरन मीतल के प्रश्न का उत्तर)

शंका:- आपने एक लेख में लिखा है कि अपने व्यक्तित्व को छोड़ कर पूर्णता का अनुभव करता आ रहा हूँ. वह शब्द और प्रकाश का मंडल है. उसे राधास्वामी मत में दयाल देश कहते हैं. उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार कारण रूप में मौजूद हैं मगर आपका, कबीर साहब का तथा स्वामी जी महाराज का कथन यह भी है कि उस देश में क्या है वह शब्दों से वर्णन नहीं किया जा सकता. न वहाँ शब्द है, न प्रकाश है न कुछ और. इसमें क्या भेद है? इसकी स्पष्ट रूप से व्याख्या कर दीजिये ताकि गलतफ़हमी से भ्रम न हो.

महाराज जी का उत्तर:- दयाल देश शब्द और प्रकाश का मंडल है. उसकी सत्ता से रचना होती है. यदि उसमें ये बातें नहीं हैं तो नीचे के लोकों में कहाँ से आ जायेंगी. इस दयाल देश के आगे एक पांचवाँ पद है जहाँ सब कुछ समाप्त है. सुरत जो शब्द की वजह से पैदा होती है, वह भी समाप्त हो जाती है. फिर वहाँ का वर्णन या अनुभव सब समाप्त! वह आधार है. वह अकाल है,अनाम है. ये शब्द भी प्रगट करने को रख लिये गये हैं. अनुभव से मानना पड़ता है कि यह सब खेल एक तत्त्व से है. सब कुछ इसी से है. जब यह ज्ञान होता है तो यह हालत होती है :-

सुरत हुई अति कर मगनानी, पुरुष अनामी जाय समानी. (स्वामीजी)

चिराग़ गुल, पगड़ी ग़ायब.

परम तत्त्व

साधो एक आपु जग माहीं.

दूजा करम भरम है किर्तम, ज्यों दर्पन में छाई.

जल तरंग जिमि जल में उपजै, फिर जल माहिं रहाई,

काया झाईं पाँच तत्व की, बिनसे कहाँ समाई.

या बिधि सदा देह गति सबकी, या विधि मनहिं विचारो,

आपा होय न्याव करि न्यारो, परम तत्व निरवारो.

सहजै रहै समाय सहज में, ना कुछ आय न जावै,

धरै न ध्यान करै नहिं जप तप, राम रहीम न भावै.

तीरथ बर्त सकल परित्यागै, सुन्न डोरि नहिं लावै,

यह धोखा जब समुझि परै तब, पूजै काहि पुजावै.

जोग जुगत ते भरम न छूटै, जब लग आप न सूझै,

कहैं कबीर सोइ सतगुरु पूरो, जो कोई समझै बूझै.

(सत्संग में ऊपर का शब्द पढ़ा गया. यह सत्संग डा. जगजीतसिंह, डिप्टी इन्स्पैक्टर को कराया गया)

यह व्यक्ति मेरा चेला नहीं है मगर मेरी इज़्ज़त करता है. सुरत शब्द का अभ्यासी है. जब यह

विदेश में गया हुआ था इसके पत्र आते रहते थे. उसके अन्तर मेरा रूप प्रगट होता है और बातें करता है. यह वही व्यक्ति है जिसके अन्तर मेरे रूप ने प्रगट होकर कुछ वर्ष पहले कहा कि होशियारपुर आ जा. चूँकि वह पोलीटिकल लाइन में काम करता है, अतः ख्याल आया कि रहस्य बता दूँ. क्यों? इसलिये कि किसी समय मेरा रूप उसके अन्तर प्रगट हो और उसको कुछ हिदायत करे. हो सकता है उस रूप की हिदायत लाभप्रद हो अथवा ग़लत हो. इस संसार के अनेक सम्प्रदायवादी, धार्मिक लीडर, पंथों वाले अथवा दूसरे लोग कहते हैं कि उनको अन्तर से कोई शक्ति हिदायत या गाइड करती है. यह सब क्या है? जो बाहरी अक्स दिमाग पर पड़े हुये होते हैं वह उसको दृष्टिगोचर होते हैं अथवा उसका मार्ग प्रदर्शन करते हैं. यह मनुष्य के अन्तर का जितना भी खेल है चाहे उस खेल के सहारे कोई योग की ओर चला जाय या पोलीटिकल लाइन अथवा किसी दूसरी ओर चला जाय, यह मुझे सिद्ध हो गया कि यह सब माया है, झाईं है और छाया है. चूंकि कबीर के ऊपर के शब्द में इसी बात का संकेत है इसलिये मैं निज अनुभव के आधार पर सन्तों के वचनों के साथ सहमत हो रहा हूँ.

साधो एक आप जग माहीं
दूजा करम भरम है किर्तिम ज्यों दर्पन में छाईं.

यह आप क्या है? वह है तत्त्व, जिसको कोई परम तत्त्व कहता है कोई निज स्वरूप (ज़ात) कहता है कोई अनाम कहता है. अभिप्राय यह है कि उसके अनेक नाम रखे हुए हैं. वह जो मालिक है उसमें चेतनता नहीं है. वह केवल एक परम तत्त्व (सुपर मोस्ट एलीमेंट) है. यह जो चेतनता है आदि गुरु है. यह भी उस परम तत्त्व से उत्पन्न होता है. इस आदि गुरु, आदि चेतनता का भी किसी समय अभाव हो जाता है. राधास्वामी दयाल के जेठ मास के बारहमासा के प्रसंग में साफ लिखा है कि न वहाँ ख़ालिक है न मख़लूक है, न ख़िलकत है न कारज है न कारण है. वह स्वस्वरूप (ज़ात) है. वह केवल एक तत्त्व है. उसमें हिलोर उठती है, शब्द प्रगट होता है तब चेतनता प्रगट होती है. तो इस संसार में तुम्हारा, दुनिया का, परमार्थ का तथा जितने जीवन के खेल हैं उनमें कौन रक्षक है? वह है जो आदि है. परम तत्त्व रक्षक नहीं है. वह मालिक या ज़ात जो है वह रक्षक नहीं है. वह आधार मात्र है, कूटस्थ है, एकरस है.

इसे जीवन के खेल में चाहे वह शारीरिक है, चाहे मानसिक या आत्मिक, रक्षक केवल वह चेतनपना अनुभव या ज्ञान या विवेक या बुद्धि है. इसलिये इस संसार में पूज्य केवल गुरु का स्वरूप (ज़ात) है. उसकी दया से उसकी वाणी को समझ कर जो आचरण करते हैं उन्हीं को सांसारिक मानसिक या आत्मिक सुख-शान्ति मिल सकती है. या उसे अपने सच्चे मालिक जिसकी मैं खोज करने चला था, का ज्ञान हो जाता है, या अनुभव आ जाता है, फिर वह खोज करके छोड़ देता है.

जल तरंग जिमि जल ते उपजै फिर जल माहिं समाई.

मैं यही कहा करता हूँ कि जीवन एक चेतन्य का बुलबुला है. उसी से उठता है, उसी में समा जाता है. जब तक यह अनुभव ज्ञान नहीं होता तब तक मनुष्य को अपने जीवन को गुजारने के लिये उस चेतन्यरूपी सत्गुरु की आवश्यकता रहती है. इसीलिये मैंने यह समझकर कि डा. जगजीत सिंह इस उलझन में जाकर लाभ के बजाय कहीं अपनी या दूसरों की हानि न कर बैठें उन्हें यह सत्संग करवाया है. जब यह ज्ञान हो जाता है, जैसा मैंने ऊपर कहा है, ऐसा पुरुष न तो पोलीटिकल लाइन

में दख़ल देता है, न योग की लाइन पर काम करता है, न अध्यात्म के लिये काम करता है. उसके लिये करना-धरना कुछ नहीं रहता. वह स्वयं तत्त्व हुआ, तत्त्व स्वरूप में संसार में विचरता है. दाता दयाल का बड़ा अहसान है, यद्यपि अब इतनी ऊंची अवस्था में जाने पर दाता दयाल भी और उनके अहसान भी भूलता जा रहा हूँ. चूँकि अभी पहली झाईं पहले जीवन के अक्स जो दिमाग पर पड़े हुए हैं उनके कारण या उनका रूप, उनकी याद, उनका अहसास मानने की विवशता बन जाती है.

या विधि सदा देह गति सबकी, मनहिं या विधि विचारो.
आपा होय न्याव करि न्यारो परम तत्त्व निरवारो.

मैंने भी यह कहा कि सत्गुरु अनुभवरूप है वही बात कबीर ने कही है. यह उस आदिकर्ता का खेल है और क्या कहूँ.

सहजै रहै समाय सहज में न कुछ आय न जावै,
धरै नहिं ध्यान करै नहिं जप तप, राम रहीम न भावै.

अब मेरे दिमाग से दाता दयाल का ख्याल, उनका प्रेम, उनका अहसान भी अनुभव होने पर समाप्त होता जा रहा है और केवल एकपना छाया रहता है. समय था जब कई बार मन को लानत दिया करता था कि क्या हो रहा है तुझे! अपने को गिरा हुआ समझता था! इस कबीर के शब्द ने हौसला दिया कि ऐसा होना ही है. यही जीवन का परिणाम है.

चला था राम या मालिक को मिलने को. अनुभव ने कहां पहुंचाया कि अब उस अनुभवरूपी सत्गुरु के कारण, राम, रहीम या मालिक का ख्याल भी छोड़ता जा रहा हूँ. छोड़ नहीं रहा किन्तु अनुभव रूपी सत्गुरु बलात् छुड़ा रहा है. कबीर ने भी यह कह दिया कि जो इस गति को प्राप्त कर लेता है उसका यही परिणाम होता है. आज दाता दयाल का शब्द याद आया जिसमें वे मुझे लिखते हैं:-

तू है क्या? तू मरकज़े, आलम है मर्दे फकीर, गिर्द तेरे फिर रही है, दुनिया होकर के असीर.
तर्क़ दुनिया तर्क़ उकवा, तर्क़े मौला कर दिया, तर्क़ का भी तर्क़ है, तर्क़ से दिल भर गया.

इसलिये जिधर को भी अनुभवरूपी सत्गुरु ले जा रहा है वह ग़लत नहीं है.

तीरथ बर्त सकल परित्यागै, सुन्न डोर नहिं लावै,
यह धोखा जब समुझि परै तब, पूजै काहि पुजावे.

कबीर के इन शब्दों में इस प्रकार की कथी गई बातों से एक हौसला मिलता है कि जिस रास्ते में ऐ फकीर! तू चला उसकी मंजिल दूर थी. कोई सांसारिक पदार्थों में फँस जाता है, किसी में सिद्धि शक्ति आ जाती है, कोई प्रेम, आत्मान्द, कोई मन की एकाग्रता से मनानन्द, कोई ज्ञानानन्द में ठहर जाता है. दाता दयाल का संस्कार था. उन्होंने नाम दिया हुआ था. वह नाम रंग लाया. नाम के जपने का परिणाम यह हुआ कि अपने घर अर्थात् परमतत्त्व की ओर रुख़ हो गया.

जोग जुगत तें भरम न छूटै, जब लग आप न सूझै,
कहैं कबीर सोई सतगुरु पूरा, जो कोई समझै बूझै.

फिर सत्गुरु कौन है? जिसको अपने रूप का ज्ञान है. वह जो रूप का ज्ञान है जिसको मैं अनुभव कहता हूँ वही सत्गुरु है. इस दुनिया के अन्दर सांसारिक, मानसिक, आत्मिक, पोलीटिकल तथा सोशल जीवन में कोई राम किसी का सहायक नहीं बन सकता. जब कोई सहायक होगा, वह बुद्धि, विवेक तथा ज्ञान से ही सहायक हो सकता है और यह बुद्धि, विवेक तथा ज्ञान वही दे सकता

है जो इन श्रेणियों से गुजर कर सार अनुभव को प्राप्त कर चुका है. इसलिये इस संसार में ख़ुदा, राम या ज़ात की पूजा के बजाय गुरु पूजा सबसे बढ़ कर है. गुरुपूजा से अभिप्राय ऐसे पुरुष का सत्संग और उसकी आज्ञा का पालन है.

नोट:- इस प्रकार के स्पष्ट वर्णन और सत्यता के विचारों से साम्प्रदायिक और पांथिक आडम्बर टूटता है. मेरी नीयत ऐसी नहीं है किन्तु साम्प्रदायिक और पांथिक दायरों से परस्पर द्वेष और घृणा को दूर करना है. दायरे तो रहेंगे ही, इनके बिना हमारा गुजारा नहीं, मगर यदि दायरों को अज्ञान से बना कर अपने दायरे को दूसरों से बढ़-चढ़ कर बताने का प्रोपैगंडा कायम रहे तो मानव जाति की एकता नहीं हो सकती. इसके अतिरिक्त अगर विवेक के साथ, समझ-विचार के साथ जीवन गुजारा जाय तो मनुष्य का जीवन सुख से गुजर सकता है. मानव मन सहारा चाहता है. तो जहां जिस दायरे में जिस ख्याल से किसी को सहारा मिलता हो वह ले. जीयो और जीने दो. जिस मंजिल पर मैं बोलता हूँ, मैं स्वयं महसूस करता हूँ कि इस पर रहना, ठहरना कठिन काम है. इसलिये मेरे मार्ग में गुरुमत को तरजीह है. जितने ऋषि-मुनि, पीर-पैग़म्बर हुये अपने समय में उन्होंने जीवों को सहारा ही तो दिया. उनकी शिक्षा उस समय के लिये ठीक थी. अब अंतर्राष्ट्रीय हालत के कारण शिक्षा को बदलने की अत्यन्त आवश्यकता है. इसलिये मुझे नहीं मालूम मैंने क्या किया. जैसा मौज ने कराया, कर दिया.

सत्गुरु महिमा

शब्द

सत्गुरु का भाव जो मैंने समझा है या वर्णन किया है वही भाव कबीर के नीचे दिये शब्द से प्रगट होता है.

वारी जाऊँ मैं सतगुरु के मेरा किया भरम सब दूर.
चन्दा चढ़ा कुल आलम देखे मैं देखूं भ्रम दूर.
हुआ प्रकाश आस गई दूजी उगिया निरमल नूर.
माया मोह तिमिर सब नासा पाया हाल हजूर.
विषय विकार लार है जेता जारि किया सब धूर.
पिया पियाला सुधि बुधि बिसरी हो गया चकना चूर.
हुआ अमर मरै नहिं कबहूं पाया जीवन मूर.
बन्धन कटा छूटिया जम से किया दरस मंजूर.
ममता गई भई उर समता दुख सुख डारा दूर.
समझे बने कहे नहिं आवै, भयो आनंद भरपूर.
कहै कबीर सुनो भाई साधो बजिया निरमल तूर.

द्वितीय भाग

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरःगुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मैश्री गुरुवे नमः

प्रार्थना

चरण कमल कर जोड़ कर विनती करूँ सप्रीत, भक्ति भाव प्रभु दीजिये, निज चरनन परतीत.
तुम समान दाता नहीं, करुणा सिन्ध अपार, दीन हीन की सुधि करो, भव जल भंवर निकार.
तुम भ्राता तुम बन्धु गुरु, तुम सम्बन्धी देव, भक्ति भाव राचा रहूँ, करूँ तुम्हारी सेव.
मन लोभी भौंरा सरिस, चरण कमल मंडलाय, प्रीति रीति रस भोग को, छांड कहूं नहिं जाय.
सतगुरु मूरति हिय बसी, सुमरि सुमरि सत नाम, मेरे मन तुम यों रमो, जस कामी मन काम.

माया का अंग

माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै संसार,जा ठग ने ठगनी ठगो, ता ठग को नमस्कार.
माया छाया एक सी, बिरला जाने कोय,भगता के पाछे लगै, सन्मुख भागै सोय.
कबीर माया पापिनी, मांगे मिलै न हाथ,मनहुं उतारी झूटकर, लागी डोलै साथ.
मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय,पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सब को खाय.
झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय,ऐसे जन के निकट से, सब दुख गये हिराय.
कबीर माया जात है, सुनो शब्द निज मोर,सखियों के घर साध जन, सूमों के घर चोर.
कबीर माया सूम की, देखन ही का लाड़,जो वा में कौड़ी घटे, साईं तोड़े हाड़.
कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार,खावत खरचत मुक्ति भये, संचित नर्क दुआर.
खान खर्चन बहु अन्तरा, मन में देख विचार,एक खवावे साध को, एक मिलावे छार.
आंधी आई प्रेम की, ढही भर्म की भीत,माया टाटी उड़ गई, लगी नाम सों प्रीत.
आस आस जग फन्दिया, रहे उर्द्ध लिपटाय,गुरु आसा पूरन करैं, सकल आस मिट जाय.
आसन मारे क्या हुआ, मिटी न मन की आस,तेली केरा बैल ज्यों, घर ही कोस पचास.
आसा का ईंधन करो, मनसा करो भभूत,जोगी फेरी फिर करो, बुन आवे यों सूत.
चौड़े बैठे जाय कर, नाम धरा रनजीत,साहिब न्यारा देखिया, अन्तरगत की प्रीत.
कबीर माया मोहिनी, मोहे जान सुजान,भागे हूं छांड़े नहीं, तब तक मारे बान.
कबीर माया पापिनी, लाले लाया लोग,पूरी किनहुं न भोगिया, इसका अन्त बियोग.
बहुत पसारा जिन करो, कर थोडे की आस,बहुत पसारा जिन किया, वह भी गये निरास.
जो तू चाहै मुःझ को, मत कुछ राखै आस,मुझ जैसा ही हो रहै, सब कुछ तेरे पास.
कबीर जोगी जगत गुरु, तजे जगत की आस,जो वह चाहे जगत को, जगत गुरु वह दास.
कबीर माया मोहनी, भइ अंधियारी लोय,जो सोये सो मुस गये रहे वस्तु को रोय.
कबीर माया डाकनी, सब काहू को खाय,दांत उखाड़े पापिनी, सन्तों नेरे जाये.
कबीर माया मोहनी, जैसे मीठी खांड,सतगुरु की कृपा भई, नातर करती मांड.
माया दासी सन्त की, वह भी देय असीस,बिलसी और लातों छरी सुमिर सुमिर जगदीश.
मीठी सब कोई खात है, विष होय लागे धाय,नीम न कोई पीवसी, सर्व रोग मिट जाय.
माया तरुवर त्रिबिध, न सुःख दुःख सन्ताप,सीतलता सुपने नहीं, फल फीका तन ताप.

कबीर जग को क्या कहूँ, भव जल बूड़े दास,सत्त नाम को छोड़ कर, करैं मनुष की आस.
गुरु को छोटा जानकर, दुनिया आगे दीन,जीवों को राजा कहैं, परजा के आधीन.
जिन को साईं रंग दिया, कभी न होय कुरंग,दिन दिन बानी उज्जली, चढ़ै सवाया रंग.
माया दीपक नर पतंग, भ्रम भ्रम माहिं परन्त,कोई एक गुरु ज्ञान से, उबरे साधू सन्त.
माया है दो भांत की, देखा ठोंक बजाय,एक मिलावै नाम से, एक नर्क ले जाय.
कबीर माया वेस्वा, दोनों की इक जात,आबत का आदर करे, जात न पूछे बात.
माया मन की मोहनी, सुन नर रहे लुभाय,माया सबको खात है, माया कोई न खाय.
माया मुई न मन मुआ, मर मर गया शरीर,आशा तृष्णा ना मरी, कह गये दास कबीर.
माया मार मन मारिया, राखा अमर शरीर,आसा तृष्णा मार के, स्थिर भये कबीर.
तीन गुनन को बादली, ज्यों तरुवर की छांह,बाहिर रहे सो ऊबरे, भीजे मन्दिर मांह.
भूले या संसार में, माया के संग आय,सतगुरु राह बताइया, सत पद पहुंचे जाय.
कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय,मूड़ चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय.
तिल समान तो गाय है, बछड़ा नौ नौ हाथ,मटकी भर भर दुहलिया, पूंछ अठारह हाथ.
(यह सत्संग विशेष रूप से श्री ओमप्रकाश अग्रवाल दिल्ली वालों को कराया गया था।)

शब्द सुना. मैं किसी को सत्संग कराने का उत्सुक नहीं. अपनी ही कुरेद, या तलाश सामने आती है. अगर आज कबीर होते तो उनसे पूछता कि माया का इतना लम्बा शब्द क्यों बनाया गया. थोड़े शब्दों में क्यों न लिख दिया. वह थोड़े शब्द ये हैं. सुनो. मुझे उस मालिक को मिलने की उत्कट लालसा थी. उसको ढूंढता, चला आ रहा हूँ. पहले तो ये संसार के जो पदार्थ हैं संतान धन, मान इनके पीछे दौड़ता था, चूंकि ये नित्य नहीं रहते, ये थे और रहते हैं और हमको खींचते रहते हैं और हम दुख-सुख उठाते रहते हैं, इस वास्ते मैं इसे माया समझता हूँ. यह माया हमेशा नहीं रहती. हमें भासती है. तो समझ के आ जाने से, ज्ञान की दृष्टि से, वैराग की दृष्टि से यह माया समाप्त हो जाती है. पुत्र भी, सम्पत्ति भी होते हैं गरीबी आती है तो जब विवेक आ जाता है तो फिर वह भटकता नहीं है. मैं इसे मोटी माया समझता हूँ. रह गई झीनी माया, सूक्ष्म माया, अन्तर में दृश्य आते हैं, किसी में राम प्रगट होता है, कभी सहसदल कंवल की फुलवाड़ी खिलती है, विभिन्न प्रकार के रंग दिखाई पड़ते हैं, कभी गुरु स्वरूप का ध्यान आ जाता है कभी लाल रंग पैदा हो जाता है, कभी चांद, सूरज, सितारे अन्तर में दृष्टिगोचर आते हैं. उनकी लालसा में भक्त जन दो-दो घंटे सुबह-शाम बैठकर आनन्द लेने की इच्छा करते हैं परन्तु ये दृश्य हमेशा नहीं रहते, बदलते रहते हैं. यह क्या है? यह सूक्ष्म माया है. मुझे इसका ज्ञान गुरु पदवी पर आने से हुआ. केवल एक ख्याल ने कि मैं किसी के अन्दर नहीं जाता, मेरा रूप उनके अन्तर प्रगट होता है, दवायें बताता है, बातें करता है, मरते समय ले जाता है मगर मैं नहीं होता तो यकीन हो गया कि जितने दृश्य, रूप-रंग सहस्राकार, ओंकार, रारंकार सोहंकार हैं ये सब माया हैं.

सच्चाई पसन्द मनुष्य होने के नाते क्या मेरा ऐसा विश्वास करना और मानना सही नहीं है? देवी देवताओं के अन्तर में दर्शन, बाबा फकीर या बाबा सावन सिंह के या किसी और के दर्शन अन्तर में

होना सिद्ध करता है कि राम, कृष्ण, दाता दयाल, स्वामी जी किसी के अन्तर नहीं गये. यह मन का खेल है. मन माया का साथी है. तभी कबीर ने इस शब्द में कहा है:-

मोटी माया सब तजें, झीनी तजी न जाय,पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सबको खाय.

तो जो कुछ मेरा अनुभव था वही कबीर का अनुभव निकला और यही राधास्वामी दयाल का अनुभव है. उनका कथन है:-

खो गगन के बीच श्याम कंज खिल रहा,भौंरा गया लुभाय, वहीं चढ़के मिल रहा.
धोके का वह मुकाम, उसे देखता रहा, बहु सिद्ध नाथ जोगी, उन्हें पेखता रहा.
काल अपना जाल एक, जुदाही बिछा रहा, जो जो गये वहां उन्हें उलटावता रहा.
नाना कला दिखाय, वहीं मोहता रहा, सबकी कमाई आप खड़ा खोसता रहा.
क्या क्या कहूं अनर्थ, बहु भांत कर रहा, बिन संतसत्गुरू, वह सभी को निगल रहा.
आगे न कोई जाय, इसी में भुला रहा, माया का झूला डाल, मुनन को भुला रहा.
द्वारे के पार काहु को, जाने न दे रहा, फिर भेद वहां के पार का, सब ही ढका रहा.
क्या शेष क्या महेस, सभी हार कर रहा, बिन संत उसके पार, कोई भी न जा रहा.
सो भेद राधास्वामी, सभी को सुना रहा, जिस पर है मेहर उनकी, वह परतीत ला रहा.

(ओमप्रकाश को सम्बोधित करते हुए कहा, "तुम सत्संग में आये हो. अभी तुम्हारा समय नहीं आया. आ जायेगा इसी जन्म में. अभी काल और कर्म का कर्जा सिर के ऊपर काफी है.")

ऐ धार्मिक जगत के लोगो! अब सोचो कि, जो गुरु तुमको यह बताते हैं या तुमको अपना संस्कार देकर तुम्हारे अन्तर में गुरु का रूप आँख, नाक, कान या धनुषधारी राम का रूप, या मुकुटधारी कृष्ण का रूप या तारागण, चन्द्रमा आदि दिखाते रहते हैं या दिखाने का प्रोपेगंडा करते हैं क्या वह संत सत्संग है? क्या वे गुरु हैं? वे तो तुमको माया में ढकेल रहे हैं. इस प्रकार वर्तमान धार्मिक और पांथिक दुनिया के प्रचार को देखकर मौज ने मेरे दिमाग को हिलाया ताकि जो अधिकारी जीव हैं जो इस माया में चक्कर से पिस रहे हैं या बाहर के गुरुओं से और अन्दर के दृश्यों से ठगे जा रहे हैं, उनको सार बात या सार भेद बता जाऊँ. स्वामी जी के कथनानुसार:-

क्या क्या कहूं अनर्थ, बहु भांति कर रहा, बिन सन्त सत्गुरु, सभी को निगल रहा.

अब तुम स्वयं सोचो यह इस समय जितने अपने आपको संत सत्गुरु कहते हैं जो जीवों को उनके अन्तर में रूप-रंग दिखाने के दावेदार हैं क्या वे संत सत्गुरु हैं. वे मैस्मराइज़र और हिप्नोटाइज़र (मदारी के खेल) हैं. वे तो स्वयं ही माया के चक्कर में हैं इस लिये मैंने कहा कि अगर कबीर होता तो पूछता कि आपने इतनी वाणियां रच दीं कि वे वाणियां अब माया बन चुकी हैं. वाणियां भेद नहीं देती. वाणी का जाल माया का जाल बनकर रह गया. इसलिये उस परम तत्त्व जो असली आदि मालिक है उसको तुम लोग नहीं जान पाते. चाहे तुम मुझे अहंकारी कह लो मगर मैं निर्भय होकर कहे जाता हूँ कि वह ज्ञान, भेद या वह असलियत इस समय मेरे दिमाग को

चलायमान करती है और मैं सच्चाई को प्रगट करता हूँ. माया का रूप मैंने बिल्कुल सरल भाषा में अपने अनुभव के आधार पर बता दिया. इससे निकलना महाकठिन है. उसका इलाज दाता दयाल ने किया. यह गुरु पदवी देकर इस रहस्य को समझा दिया. जिस अनुभव के आधार पर मैंने इस झीनी माया को समझा वह अनुभव मैंने बयान कर दिया. अगर कोई यह कहे कि मैं फूँक मार के किसी को इस माया से बाहर से और अन्तर से निकाल दूँ तो यह मेरे बस या शक्ति में नहीं है. 'जिस पर दया आदिकर्ता की, वह यह नियामत पावे'. तो ओमप्रकाश आज का विषय था माया का. कबीर ने दुअर्थी बात की है दोनों ओर का इशारा किया है. बाहर की माया का बल, धन दौलत का भी और अन्तरी माया का भी. तो माया क्या निकली? दौलत भी माया, स्त्री भी माया, मन के जितने संकल्प उठते हैं ये भी सब माया और रूप-रंग-रेखायें जिनको भक्त जन या योगी जन अपने अन्तर देखकर आनन्द लेते हैं वह भी माया. तो फिर असली वस्तु क्या हुई? असली वस्तु ऐ मानव! तेरा अपना आप है. सुरत है. तो जब तक शरीर है, सब वस्तुयें रहें. धन भी रहे, स्त्री भी रहे, मन के व्यापार भी रहें, मनानन्द भी रहे, विवेकानन्द भी रहे, ज्ञानानन्द भी रहे, मगर इसमें फँसा न जाय. इसलिये इसके रूप को समझ लो. आनन्द लो. इस अवस्था का नाम है जीवन मुक्त अवस्था यह न भूलो. यह ख्याल दिमाग से न जाय कि ये तुम्हारे लिये हैं तुम इनके वास्ते नहीं हो. धन तुम्हारे लिये है खाओ खर्चो. तुम धन के लिये नहीं हो. स्त्री तुम्हारे लिये है. पुत्र तुम्हारे वास्ते हैं तुम इनके लिये नहीं हो. ईश्वर, परमेश्वर, रूप, रंग, दर्शन तुम्हारे लिये हैं तुम इनके लिये नहीं हो. यही शिक्षा याज्ञवल्क ऋषि अपनी स्त्री मैत्री को दे गये. पुत्र पुत्र के लिये प्यारा नहीं, आत्मा के लिये प्यारा है. ऐसे-ऐसे वचन उपनिषद में लिखे हुये हैं. अभ्यास करो, आनन्द मिलता है. मैं कहता हूँ. सब कुछ करो मगर फँसो नहीं. मैंने यह समझा है. स्वामी जी भी इस शब्द में कहते हैः-

सो भेद राधास्वामी, सभी को सुना रहा,जिस पर है मेहर उसकी, वह परतीत ला रहा.

वह भेद! गुरु का इतना ही काम है कि वह भेद देता है. कुंजी बताता है. जिस पर मालिक की दया है वह इस रहस्य या भेद पर विश्वास करता है. दूसरा कर नहीं सकता.

सो तुम सत्संग में आये हो, जी चाहे फिर आओ, जी चाहे फिर न आओ. मैं अपने आपको किसी के साथ न बाँधता हूँ न दूसरों को इजाजत देता हूँ कि वे मेरे साथ बंधे रहें. आयु बीत गई सतपद की खोज में. हकीकत या सतपद क्या निकला? यही कि मैं अथवा प्रत्येक मनुष्य परमतत्त्व, का अंश है अथवा दूसरे शब्दों में आधार तथा कूटस्थ है. न किसी ने आज दिन तक पार पाया और न पार पा सकेगा. जो कुछ जाना जाता है, जिस वस्तु की समझ आती है जिसका अनुभव होता है, वह माया है. फिर शरीर के स्थायी त्याग के बाद क्या होगा मैं नहीं जानता. इच्छा है शरीर के त्याग के बाद यदि बता सका तो बता जाऊँगा. बताने के तीन तरीके हो सकते हैं. या तो शरीर से निकल जाने के बाद किसी ज़बान में बता सकूँ, यह तब होगा जब मैं मन को साथ लेकर शरीर से निकलूँगा. और यदि मन को साथ न ले जा सका और ज्ञान की अग्नि से यहीं दग्ध हो गया तो

फिर प्रकाशरूप में प्रगट हो सकता हूँ अथवा शब्द रूप में प्रगट हो सकता हूँ. और यदि जैसा कि मेरी रिसर्च अभी तक पूरा निर्णय नहीं कर सकी कि यह जो मेरा अपना आपा है जो अपने अन्तर प्रकाश व शब्द का भी साक्षी होता है, प्रकाश को देखता है व शब्द को सुनता है आया यह शब्द और प्रकाश से बनता है या प्रकाश और शब्द उससे बनता है. शब्द उससे बनता है या शब्द से सुरत होती है. अगर उससे शब्द और प्रकाश पैदा होता है और मैं उस अवस्था में चला गया तो कुछ न बता सकूंगा. मेरा अनुभव मुझे ले जा रहा है इस विश्वास पर कि मैं कौन हूँ? मैं चेतन का एक बुलबुला हूँ. यदि कुछ और अनुभव हो गया इस जीवन में, तो वह भी बता जाऊंगा. मैं रिसर्चर हूँ. गुरु बनने की लालसा न थी न चेले बनाने का ख्याल है. तलाश थी और बहुत हद तक तलाश समाप्त हो गई. मगर अभी बाकी है. यदि तलाश न होती तो यह इच्छा न होती कि मरने के बाद बता सकूँ.

नोटः-फिर इस माया से बचने का इलाज क्या है? यही कि किसी मायातीत पुरुष को अपनी खोपड़ी में रखो. उसका सत्संग करो. उससे प्रेम करो. रेडीयेशन का नियम, कुदरत के कानून के अनुसार तुम्हारे या दूसरों के जीवन को बदल देता है. इसलिये किसी सत्पुरुष, वीतराग पुरुष की सेवा, सत्संग लाजिमी है. उसकी आज्ञा का पालन करो. वह बेहतर जानता है कि मनुष्य का मन जो माया का रूप है किस प्रकार के विचारों में फँसा हुआ है, उरझा हुआ है. तो वह डाक्टर की हैसियत में ऐसी तजवीज़ बतायेगा कि जिन विचारों या जिस प्रकार की माया में मनुष्य की सुरत फँसी है वह उसकी उलझन से निकल सकती है.

सत्संग प्रवचन

निज स्वरूप

सुनो ओम प्रकाश! तुम सत्संग के लिये आये हो. मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि तूने यह सत्संग का झमेला क्यों लिया है. मैं छोटी आयु से उस राम, मालिक से मिलने का इच्छुक था. सनातन धर्म के संस्कारों के अनुसार रामायण से संस्कार मिला था.

नाना भांति राम अवतारा,रामायण शत कोटि अपारा.

उस मालिक को जो असली है मैं जानता न था मगर रामायण के कथन के अनुसार उसे मानवरूप में देखना चाहता था. वर्षों रोने-धोने के बाद एक मेरा दृश्य था जो दाता दयाल महर्षि शिव के चरणों में ले गया. उन्होंने संतमत या राधास्वामी मत की शिक्षा दी. कबीर व राधास्वामी की वाणियों में प्रत्येक धर्म का खंडन था, यहां तक कि वेदान्त को भी काल और माया मत कहा. खंडन के कारण उन वाणियों को पढ़ने व सुनने को चित्त नहीं चाहता था किन्तु दाता दयाल से प्रेम था. मेरा यह विश्वास न टूटा कि वह राम के अवतार हैं. उस समय प्रण किया था कि सच्चा होकर इस मार्ग पर चल कर बता जाऊंगा कि असलियत क्या है. यह मेरा कर्म भोग

है. किसी पर अहसान नहीं, मेरा जीवन व्यतीत हो चला. दाता दयाल ने मुझे सचाई के प्रगट कराने को गुरु पदवी दी थी. इस गुरु पदवी पर आने से मुझे असलियत का ज्ञान हो गया, यद्यपि मैं अभी उस मार्ग पर चलता रहता हूँ. वह ज्ञान क्या हुआ, यही कि मेरे अन्दर जितने भाव, विचार और रूप-रंग प्रगट होते थे मैं सत्य मानकर उनसे जुड़ा रहता था. कभी कोई विचार भक्ति, नेकी करने या गुरु ध्यान का, परोपकार, दान देने आदि का था. जितने भी भाव मेरे अन्दर शान्ति प्राप्त करने, राम को मिलने के उठते थे, उनके पीछे लग कर मैंने जीवन में आनन्द लिया. यदि प्रतिकूल विचार होते तो दुख भी उठता. जब गुरु पदवी पर आया और शिष्यों की बातें सुनी कि मेरा रूप उनके अन्दर प्रगट होकर उनको दवा बताता है, मरते समय साथ ले जाता है तो यह सोचने पर विवश हुआ कि मैं तो जाता नहीं, फिर उनके अन्दर कौन प्रगट होता है. चूंकि मैं नहीं होता तो मुझे विश्वास हो गया कि मेरे अन्दर जितने भी भाव, विचार, रूप उठते थे वह मेरे अन्दर से उठते थे. जिस रूप को मैं बनाता वह मेरे मन के संकल्प से बनती. वह मालिक नहीं. उसका मालिक मैं हूँ. फिर वह मालिक कहां रहा जिसकी मैं तलाश करता था. वह मालिक वह है जिसमें से मैं और ये सब वस्तुयें निकलती हैं. व्यक्तिगत रूप से हर एक का अपना आप है. हम तो बुन्द रूप हैं और हम सब बुन्दों का स्रोत वह मालिक है.

शब्द अगम साखी निगम, महिमा अमित महान,साखी शब्द को जानिये, निगम अगम की खान.

साखी या साक्षी कौन है? तुम्हारा अपना आपा, सेल्फ़, तुम्हारे अपने शरीर में है. तुम कुल (सर्वाधार) नहीं हो. जब तक तुम्हारा अस्तित्व इसी शरीर में स्थित है तुम कुछ नहीं, बुन्द हो. अंश हो. चूंकि तुम्हारा अपना आप जो कुल है उससे सब कुछ निकलता है. इस समझ से शान्ति मिलती है. तुम ख़ुदा नहीं हो. तुम अपनी रचना के, अपनी शरीर भान-बोध और अपने मन के खेलों के साक्षी हो. जब तक कोई आदमी उसका जो कुछ उसके अन्दर से निकलता है अथवा उसको बोध-भान होता है, उसका पुजारी है और उसके सहारे सुख लेता है उस समय तक उसे चैन नहीं मिल सकता, क्योंकि जो वस्तु, विचार-भाव, रूप-रंग तुम्हारे अन्दर से पैदा होते हैं वह नित्य नहीं रहते. तुम्हारे मन के अन्तर से पैदा हुआ विचार सदा न रहेगा. कुछ समय के बाद टूट जाएगा. रूप टूट जाएगा. प्रेम का भाव भी टूट जाएगा. फिर किसी ऐसी वस्तु को इष्ट बनाओ जिसको तुमने उत्पन्न नहीं किया है. तुम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अवस्था से जो इष्ट बनाओगे वह स्थायी सुख न देगा क्योंकि वह परिवर्तनशील है. तो फिर इष्ट क्या बनाया जाय? अपने ही निज स्वरूप (ज़ात) का. सोच लो मैंने क्या कहा. आपका अपना रूप क्या है? तुम अभ्यासी हो. काफी उन्नति की हुई है. मन सुमिरन करता हुआ जब अमन हो जाता है, संकल्प-विकल्प छोड़ देता है अगर तुम उस अवस्था में ठहरने की कोशिश करो तो वहां क्या होता है? यह वे जान सकते हैं, जो अजपा जाप करते हैं, जो सुमिरन करते हैं, उनको उसका पता लगता है. एक वह अवस्था आती है जब वह संकल्प रहित होकर अपने अन्दर कोई रूप नहीं रखता. उस अवस्था

को कहते हैं सुन्न या महासुन्न या निर्विकल्प समाधि. उसमें कुछ भासता नहीं. जिस वस्तु में कुछ भासता नहीं वह पूर्ण नहीं है क्योंकि नेस्ती से हस्ती नहीं होती. हम हैं तो फिर हम क्या हैं? हम हैं प्रकाश, नूर या लाइट या आत्मा. जो व्यक्ति अपने अन्दर निर्विकल्प समाधि लगाता हुआ अपने प्रकाशरूपी आत्मा के दर्शन करता है वह उसका आत्म स्वरूप है. तुम अभ्यासी हो. जीवन भर गुरु रूप की दाढ़ी, मूँछ, आँख बना कर देखते रहोगे तो आनन्द तो मिलेगा, ऋद्धि-सिद्धि आ जायेगी, मनोकामनायें पूर्ण होंगी मगर इस आवागवन के चक्र से तुम बच न सकोगे क्योंकि मन, जो सूक्ष्म प्रकृति है, जब महासुन्न की अवस्था में लय हो जाता है तो इसके बाद फिर वह उत्पत्ति, सृष्टि और प्रलय करता रहता है. जितने योगी हैं जो निर्विकल्प समाधि तक ही पहुंचे, उन्होंने आनन्द लिया, ऋद्धि-सिद्धि वाले हो गये, सांसारिक सुख लिये मगर इस 84 के चक्र से न निकल सके. प्रकाश स्वरूपी आत्मा, जिसके ऊपर सूक्ष्म प्रकृति या मन का खोल था, उससे वह निकल न सके. मुझे यह ज्ञान, यह अनुभव सिखाया तो दाता दयाल ने मगर मेरी खोपड़ी में क्रियात्मक (अमली) पहलू से न बैठा था. जो कुछ अनुभव मैंने प्राप्त किया आप सत्संगियों से किया. मैंने सोचा कि सैन-बैन या संकेत जो सन्तों ने किये उसे बिरले ही समझ सके. जिज्ञासु इस चक्र से निकल न सके. इसलिये अधिकारियों के हित के लिये इस राज़ या रहस्य को खोला है. चूंकि तुम जिज्ञासु थे, तुमने मेरा भाषण दशहरे पर सुना, तुम प्रभावित हो गये. फिर मेरे पीछे चक्कर काटने लगे. मैं तुमको अपने पीछे लगाना नहीं चाहता. दूसरे गुरु तो तेरे जैसे धनवान को देख कर खुश होते हैं और धन-मान की आशा में आकर तुम जैसे जीवों को हौसला या लालच या सब्ज़ बाग़ दिखा-दिखा कर संसार में एक पाखंड का जाल फैलाते हैं. अब तुमको क्या करना है? तुम कहते हो कि तुम्हारा प्रकाश और शब्द खुला है. अब अपने आपको उस प्रकाश और शब्द में ठहराने का साधन करो. बहको नहीं. किसी भी बाहरी गुरु का सदा के लिये ध्यान रखना तुमको अपने घर या अपने असली दरबार में, जहां से तुम आये तो वहां नहीं ले जायगा. हम कहां से आये हैं? तुमने स्वयं अपने अन्तर में देख लिया कि तुम्हारे अन्तर प्रकाश होता है, शब्द होता है फिर तुमको विश्वास क्यों नहीं आता कि तुम शब्द और प्रकाश स्वरूप हो. हमारा असली घर प्रकाश और शब्द का एक महामंडल है. बहुत ऊंचा जिसे सत्तलोक कहते हैं तुम्हारा प्रकाश स्वरूपी और शब्द स्वरूपी से वहां अर्थात सत्तलोक से आया हुआ इस शरीर में रहता है. जो व्यक्ति प्रकाश और शब्द स्वरूप होता हुआ शरीर के नाश होने के पश्चात् शरीर से निकलेगा, वह अपने ही उस शब्द और प्रकाश के मंडल में जायेगा. वह भंडार ऐसे ही है, जैसे इस दुनिया में यह भू-लोक है. सनातन धर्म का मंत्र हैः-

ओउम् भूर् ओउम् भुवः ओउम् स्वः ओउम् महः ओउम् जनः ओउम् तपः ओउम् सत्यम् तत् सवितुर्वरेण्यम, भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्.

भूलोक है जाग्रत. खुली आँख से हम इस भूलोक को देखते हैं. सूर्य हैं, चन्द्रमा हैं, तारागण हैं. ऐसे

ही भुवः लोक है. जो स्वप्न की दुनिया है. तुम स्वप्न में तरह-तरह के दृश्य देखते हो. वह भुवः लोक है. जब गहरी नींद में जाते हो. वह स्वः लोक है. यदि तुम चेतन्य होकर अपनी इच्छा से संध्या करते हो, सन्धि मिलाते हो तो मंजिल पर आ जाओगे. लोग केवल मंत्र पढ़ना जानते हैं. संध्या का अर्थ सन्धि है. जाग्रत और स्वप्न के बीच एक अवस्था आती है उसका नाम है सन्ध्या. साधन करते हुये जाग्रत और स्वप्न को मिलाओ. तुम सोने जाते हो. जागते होते हो. जब नींद आती है तो इनके बीच एक अवस्था आती है कि तुम स्वप्न में चले जाते हो, फिर गहरी नींद में जाना भी सन्ध्या है. गहरी नींद और आत्मा की चेतन्यता के बीच एक और वैसी ही सन्ध्या आती है इसको महः कहते हैं. आत्मा की चेतन्यता थोड़ी सी आती है जैसे गहरी नींद से उठने पर थोड़ी सी चेतन्यता होती है, फिर वह आत्मा की चेतन्यता बढ़ जाती है, यहां तुम्हारा प्रकाश स्वरूपी आत्मा खिल जाता है. स्वप्न, जाग्रत, सुषुप्ति और तुरिया समाप्त. फिर प्रकाश स्वरूपी आत्मा अपने अन्तर प्रकाश स्वरूप हो जाता है. वह रचना करता है. वह जनः है. वहां आत्मा अपने आत्मपने की अवस्था का आनन्द लेता है. वह आनन्द व्यक्तिगत है, तुम्हारा अपना है. चूंकि पूरा गुरु मिला होता है इसने उसको दीक्षित किया हुआ होता है, इसलिये कि वह अपने घर में स्थायी जीवन प्राप्त करले. जन्म-मरण से बच जाये. फिर वह जिस तरह से जाग्रत में सुमिरन करता हुआ समाधि में चला जाता है, इसी तरह वहां जो आत्मा प्रकाश स्वरूपी है वह तप करता है. इच्छा करता है कि मैं उस बड़े भंडार परमात्मा को देखूं. इस अवस्था का नाम ओउम् तपः है. जब वह तप करता है, आत्मा परमात्मा से मिलना चाहता है अथवा हमारा छोटा प्रकाश स्वरूपी आत्मा जब बड़े प्रकाश स्वरूप परमात्मा से मिलना चाहता है वह उससे मिल जाता है. उसे कहते हैं ओउम् सत्यम्. फिर उसके लिये क्या करना चाहिये कि प्रकाश और शब्द में रहते हुये तुम्हारी आत्मा प्रकाश और शब्द में लय हो. उसमें प्रवेश करने और ठहरने का साधन करे, इस साधन का नाम है ओउम् तपः. यह सनातन धर्म के अनुसार संतमत के शब्दों में सोहंग पुरुष से आगे जाना है. वह शब्द है. शब्दों के भाव को समझने की कोशिश करो. फिर आगे क्या है?

शब्द अगम, साखी अगम, महिमा अमित महान, साखी शब्द को जानिये, निगम अगम की खान.

उस समय तुम अपने रूप को जानोगे कि जो तुम्हारा अपना रूप है वही स्थायी है. शेष सब खेल कृत्रिम (बनाया) हुआ है. तुमको बताने वाला कोई नहीं. कब? जब तुम उस शब्द और प्रकाश के भण्डार में हो मगर तुमको यह समझ न आयेगी क्योंकि

यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार,कथनी तज करनी करो, तब पाओ कुछ सार.

तुम मेरे पास आये हो. मैं न फूंक मारना जानता हूँ न पाखंड आता है, संस्कार देता हूँ. ख्याल देता हूँ. रेडीयेशन काम करता है. मनुष्य कोई वस्तु बाहर से लेता है. जिस तरह प्रातः घूमने निकलो ठंडी हवा का वह वायुमंडल स्वयं तुमको कुछ नहीं देता किन्तु तुम में प्रवेश कर जाता है और तुम प्रसन्न हो जाते हो, सूर्य चमक रहा है, किरणें निकल रही हैं. सूर्य यह नहीं कहता कि मैं किसी को

किरण दूँ किसी न दूँ. नदी यह नहीं कहती कि एक को पानी पिलाऊँ और दूसरे को न पिलाऊँ. इसी प्रकार संत की अथवा अन्य किसी की रेडियेशन से स्वयं दूसरों को जो अधिकारी हैं, स्वाभाविक लाभ मिलता है. इसलिये आज्ञा है कि आत्मनेष्टी पुरुषों की संगत करो. उनसे प्रेम करो. आवश्यक नहीं कि तुम ऐसे पुरुष को गुरु मानो. गुरु नाम है ज्ञान का. ऐसे पुरुष की सेवा, प्रेम, दर्शन, उसकी बातें सुनने से वह वस्तु स्वयं मनुष्य के अन्दर उत्पन्न हो जाती है. इसलिये साधुओं या महापुरुषों से प्रेम करना लाजिमी है. अतः वे गुरु बन गये. इस सिद्धन्त के अधीन लोग उनकी सेवा करने लगे. उन्होंने इस सेवा और प्रेम से बेजा लाभ उठाया. दूसरों के जीवन में परिवर्तन नहीं हुआ. खरबूजे को देख कर खरबूजा रंग बदलता है. मेरी संगत जो केवल इसी विचार से करते हैं उनको लाभ मिलेगा. मेरी संगत स्त्री और बच्चे भी करते हैं उनको लाभ मिलेगा. मेरा नौकर भी मेरी संगत करता है. उनको लाभ नहीं पहुँच सकता यद्यपि संस्कार उनको भी मिल जाता है मगर उस संस्कार को बढ़ने प्रफुल्लित होने में देर लगती है और समय की आवश्यकता है. संतों का कथन है कि जिस घर में संत पैदा होता है उसकी सात पीढ़ी तर जाती हैं. क्यों? क्योंकि उनको रेडीयेशन मिलता रहता है. और यह सिद्धन्त है. समय पर संस्कार जाग उठता है. जब सुरत प्रकाश और शब्द के मंडल में चली जाती है फिर उसे ज्ञान हो जाता है कि मैं आधार हूँ. यह वेदान्तियों के शब्द हैं. भक्त जन कहते हैं सत्गुरु या मालिक आधार है. यह अहंता के और वह हीनता के शब्द हैं. अहंकार या 'मैं वही हूँ' के शब्द प्रयोग करने से अहंकार आ जाता है. दीनता के शब्द आने चाहियें. उस अवस्था में पहुंचने पर यह जीवन मुक्त हो जाता है. वह इस प्रकार कि हमारा आपा या सेल्फ़ आत्म स्वरूपी, परमात्मा स्वरूपी शब्द और प्रकाश के भंडार से मिल जाने के बाद सत्संग तथा साधन के कारण उसे ज्ञान हो जाता है कि जो कुछ मेरे अन्तर से निकलता है यह माया है, कल्पित है. वह फिर माया रूपी दृश्यों, विचारों और अर्चनाओं में फँसता नहीं मगर वह अपने आदि भंडार से लगा रहता है. इसे कहते हैं जीवन मुक्त अवस्था. फिर वह साक्षी है. आश्रित नहीं है. तमाशाई बन जाता है. वह वस्तु मुझे मिली है जो मैं कहता हूँ. इसका दावा नहीं कि ठीक ही है. प्रण था कि सचाई बता जाऊंगा. क्या मिला? जीवन मुक्त अवस्था. अब जब तब होश आता है उस मालिके कुल के भंडार से प्रेम करता हूँ, यही आदर्श सनातन धर्म और जैनियों और बौद्धों का है. यही संतों का साराँश है. हाँ, यह बातों से न आयेगा. करनी से या रहनी से आयेगा. करनी क्या है? सुरत का शब्द और प्रकाश को सुनना और देखना. इस करनी से फिर रहनी आ जाती है.

करनी करे से पूत हमारा, कथनी कथे सो नाती,रहनी रहे सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी.

जो पुरुष इस जीवन मुक्त अवस्था में अमली (क्रियात्मक) रूप से रह सकता है वही गुरु है. चूँकि उसकी रहनी होती है. उसकी संगत और प्रेम करने वालों को फायदा होता है. इसलिये उस अवस्था को प्राप्त करने के लिये पातंजलि योग में सरल नुस्खा है. वह यह है कि अधिक कुछ न बने तो किसी वीतराग, मायातीत पुरुष को अपनी खोपड़ी में रखो (अर्थात् उसका ध्यान

करो). जगमोहन! तुम आये हो. मेरा नाम दान यही है दाता दयाल ने मुझको नाम दान दिया था-- राधा आदि सुरत का नाम, स्वामी आदि शब्द पहचान-- अर्थात हमारी सुरत जो शब्द का भंडार है उसके साथ मिलने से जो हमारे अन्तर अवस्था पैदा होती है उसका नाम राधास्वामी है. तो आरम्भ में राधास्वामी नाम का अजपा जाप बिना जुबान के हिलाये हुये सुमिरन करो और गुरु स्वरूप का ध्यान किया करो. रेडियेशन के नियम के अनुसार तथा सुमिरन ध्यान से तुम्हारे मन को, आत्मा को नहीं, शान्ति मिलेगी. आत्मा को शान्ति तो प्रकाश स्वरूपी सत्गुरु के चरण और शब्द स्वरूपी गुरु से जब मेल होगा तब मिलेगी. इसलिये तुम ऐसा किया करो.

श्रुति स्मृति का सार है, मर्म न जाने कोय,
जो कोई पढ़े विचारे, सहजै पंडित होय.

हिन्दू धर्म में श्रुति और स्मृति है. श्रुति क्या है? अन्तर में जो नाम है जिसको मैं शब्दब्रह्म कहता हूँ उसको सुनना श्रुति है और उसके सुनने से जो दशा हमारे अन्तर आनन्द, व अजर अमर होने का विश्वास पैदा होता है उस विश्वास का नाम है स्मृति. यह राधास्वामी मत या संत मत सब सनातन धर्म है. चूंकि गुरु नहीं मिलता, समझाने वाला नहीं, गुरु पूर्ण नहीं, अतः बात का बतंगड़ बन गया, और शास्त्रार्थ होते हैं. श्रुति जो सुना जाय. स्मृति जो स्मरण रहता है वह स्थित हो जाता है. तो सुरत का शब्दब्रह्म से मेल करना या नाम को सुनने से एक अपने 'हैपने' की निश्चयात्मक अवस्था जो हर समय स्थित है, का विश्वास स्मृति है. उदाहरणतः मेरे पिता ने मेरा नाम फकीरचन्द रखा, जिसे मैं सुनता रहा. माँ ने फकीरचन्द कहा, साथियों ने फकीरचन्द कह कर पुकारा. अब मुझे अपने फकीरचन्द होने का हर समय विश्वास रहता है. इसी प्रकार इस बात का विश्वास हो जाना कि मैं अजर-अमर हूँ इसका नाम है सुमिरन.

अतः असली गुरु है शब्दब्रह्म, नाम. यह गुरु का असली रूप है. जब उसकी प्राप्ति हो जाती है तो शान्ति मिल जाती है. जिनको मिला हुआ है उस अवस्था को सिर पटक कर कोई सन्त मर जाय, वर्णन नहीं कर सका है, जिस प्रकार काम के रस का कोई वर्णन नहीं कर सकता. वह अनिर्वचनीय है. इसके रस का प्रतिबिम्ब मनुष्य के चेहरे से प्रतीत हो सकता है. मैं सत्संग कराया करता हूँ उस समय मेरे चेहरे की दशा भिन्न होती है. समाधि से उठूँ तो भी भिन्न होती है. यों साधारण जीवन में और होती है. तो साधु या संत दर्शन जब वह उस अवस्था में हो तो अधिक लाभदायक होते हैं. यह है नियम.

साखी साखी सरूप है स्मृति सुमिरन सार,सुरत लखी साखी बनी, शब्द का किया निरवार.

अपने अन्तर जो शब्द होते हैं वे कई प्रकार के हैं. शब्द दो वस्तुओं के टकराने से भी होते हैं. किसी वस्तु की गति से भी होता है. तो असली सार शब्द वह है जो मन की वासनाओं से निकलने के बाद अर्थात् मन के समस्त विचारों को छोड़ने के बाद जो तुम्हारे आप, सेल्फ़, में स्वाभाविक गति से होता है. वह जो शब्द है वह सार शब्द है. वही शब्दब्रह्म है. यह

घंटा, शंख, मृदंग, आग, रारंकार, सोहंकार के शब्द क्या है. यह सूक्ष्म और कारण प्रकृति की गति से, जो मस्तिष्क में होती है, पैदा होती है. शरीर की गति के कारण भी शब्द पैदा होते हैं जैसे ह्रांग, क्रांग, क्रींग आदि. तो संतों ने उस सार शब्द की महिमा गाई है. वह वह तत्त्व है. अपने आप में खेलता रहता है. वह आदि शब्द है उसका नाम ही राधास्वामी नाम है. किसी ने निज नाम कह दिया किसी ने सत् नाम कह दिया.

राधास्वामी नाम है सुरत शब्द भंडार, भागवती गुरु नाम से, उपजै विमल विचार.

सत्संग प्रवचन (मानवता मन्दिर 4-12-1967)

आज काज मेरे कीने पूरे। बाजे घट में अनहद तूरे ।।
भाग उदय आज हुये हमारे। राधास्वामी चरन सीस पर धारे।।
बिमल आरती अब मैं गाऊं। परस चरन और बलबल जाऊं।।
कोटि जन्म से धोखा खाया। बिन स्वामी जोनी भरमाया।।
दाव पड़ा मेरा अब के ऐसा। राधास्वामी चरन आप मैं परसा।।
अब पाया मैंने अजर विलासा। क्या कहूं महिमा अधिक हुलासा।।
रोम रोम रग रग मेरी बोली। राधास्वामी राधास्वामी घुंडी खोली।।
रंग रंगी मेरे तन की चोली। सुन सुन धुन अब भईहुं अमोली।।
घूम चली अब गगन मंझारा। सुन्न शिखर का झांका द्वारा।।
मान सरोवर किये अश्नाना। सत्तनाम सूं लागा ध्याना।।
महासुन्न धारी चढ़ भागी। सत्त पुरुष के चरनन लागी।।
हंसन साथ करूँ अब आरत। प्रेम मगन होय दुक्ख बहावत।।
अमी अहार किया मैं भारी। छिन छिन दर्शन पुरुष निहारी।।
शोभा बरनी न जाय अपारी। आरत पूरन हो गई सारी।।
धन धन धन धन क्या कहुं महिमा। राधास्वामी राधास्वामी पलपल कहना।।

दाता दयाल मुझे वहमियों का पीर कहा करते थे. इसके दो अर्थ हो सकते हैं. एक यह कि मैं बहुत वहमी हूँ और दूसरा यह कि जो वहमी हैं उनका पीर (गुरु) हूँ. मैं यह समझता हूँ कि मैं वहमियों का गुरु तो नहीं किन्तु स्वयं वहमी हूँ. वहमी का अर्थ है जिसको किसी बात पर पूरा विश्वास न आवे और वह अन्तर में प्रश्नोत्तर करता रहे. मैं मालिक की खोज में निकला था. भिन्न-भिन्न धर्मों ने अपने-अपने विचार प्रगट किये हुये हैं. चित्त हर बात को देखना और आज़माना चाहता था. राधास्वामी मत के सम्बन्ध में जब तक मैंने अमली पहलू से इसका साक्षात्कार नहीं किया मुझे सन्देह रहा. यदि सन्देह नहीं हुआ तो केवल दाता दयाल पर जिनको मैंने मालिक का स्वरूप मान कर प्रेम किया था. उस समय मैंने प्रण किया था कि जो अनुभव होगा कह जाऊंगा.

आज काज मेरे कीये पूरे। बाजे घट में अनहद तूरे।।

हमारे काज क्या हैं जो सारे पूरे हो गये. काज का अर्थ है काम. हमारे मन में अनेक प्रकार की

इच्छायें थीं. अभ्यास में किसी वस्तु की इच्छा हमें नीचे खेंच कर अभ्यास कराती है. बात बड़ी सूक्ष्म है. हर समय तुम्हारे दिमाग में मेरे दिमाग में कुछ कुरेद रहती है. अभ्यास करते हो तो कोई चाह तुम्हारे अन्तर होती है. जब मनुष्य की सुरत अपने अन्तर रूप, रंग, रेखा, प्रश्न या कोई चाह छोड़ देती है तब जो अवस्था आती है अर्थात् जहां सब कुछ छूट जाता है वह है काज का पूरा होना. इच्छाओं का पूरा होना, अन्तर में सवालों का न उठना, यह तब ही हो सकता है जब मनुष्य उन केन्द्रों को छोड़े जहां से यह इच्छा या प्रश्न उठते हैं. जब तक किसी का ध्यान शरीर में है, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी से कभी बच नहीं सकता. जब तक ध्यान मन में है, वह संकल्प-विकल्प उठाने से बच नहीं सकता, चाहे संकल्प किसी प्रकार के हों. यह जो नाम है शब्द या शब्दब्रह्म यह वह अवस्था है जो देह मन और आत्मा से ऊंची है. इस सृष्टि का आदि शब्दब्रह्म है या शब्द है जब मनुष्य की सुरत इस मंजिल या अवस्था को तै करती हुई इस नाम या शब्दब्रह्म में पहुंच जाती है तथा स्वाभाविक ही मन और देह के केन्द्र से ऊंची चली जाती है. ये जितनी आशायें या वासनाएँ हैं तथा जो प्रश्नोत्तर हैं जो देह और मन और भूरे रंग के दिमाग के केन्द्रों के कारण पैदा होते हैं, वे समाप्त हो जाते हैं. फिर हम को अपने अजर-अमरपने का अनुभव होता है कि मैं या वह वस्तु जो शब्द को उस समय सुनती है या शब्दब्रह्म में प्रवेश होती है वह अजर-अमरपने के होने का पूर्ण निश्चय कर लेती है. मैं ऐसा समझता हूँ.

भाग उदय आज हुए हमारे।राधास्वामी चरण शीश पर धारे।।
विमल आरती अब मैं गाऊं।परस चरण और बल बल जाऊं।।

इस अवस्था को दिलाने वाला बाहर का गुरु है. दाता दयाल महर्षि शिव थे जिन्होंने दया करके मुझ से खेल खिलाया और यह रहस्य ज्ञान करा दिया. चूंकि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता तो जिनके अन्तर मेरा रूप प्रगट होता है, उनसे बातें करता है वह उनका अपना ही मन होता है, इसलिये मैं विवश हो गया इस मन के छोड़ने के लिये, क्योंकि दाता दयाल ने तथा ऋषियों और संतों ने उस मालिक को मायातीत कहा है. तुलसीदास भी रामायण में लिखते हैं:-

गो गोचर जहँ लग मन जाई, तहँ लग माया जानेऊ भाई।

यह सनातन धर्म की शिक्षा है. जब मुझे यह विश्वास हुआ कि मैं तो किसी के अन्तर जाता नहीं, तो लोग अपने अन्तर में राम, कृष्ण या गुरु के रूप को बना कर मनानन्द, ज्ञानानन्द, विवेकानन्द लेते हैं और उन आनन्दों में रूप, रंग और उसके देखने की चाह रखते हैं तो वह रूप वह माया ही तो हैं. कहीं स्थूल, कहीं सूक्ष्म और कहीं कारण.

दाता दयाल इशारों में कहते थे मगर मैं उन इशारों को समझ नहीं सकता था. गुरु पदवी पर आने से इस माया के रूप का ज्ञान हो गया. चूंकि असलियत या सच्चाई के जानने की तड़प थी, मेरे कर्म थे या मौज थी, मैं सफल हो गया. यह समझ कर कि बहुत से जीव जिन्होंने नाम की दीक्षा ली है, गुरु धारण किया है और आयु बीत चुकी है उनको यह वस्तु नहीं मिली, अर्थात् इस बात का

विश्वास नहीं हुआ कि ऐ मानव! तू स्वयं ही शब्दब्रह्म है, तू पूर्ण है, इसलिये मैंने इस रहस्य को सादा खुले शब्दों में वर्णन किया है. चूंकि यह ज्ञान दाता दयाल के कारण प्राप्त हुआ, इसलिये जब तक जीवन है उनका काम करता हूँ. गुरु की शिक्षा को फैलाता हूँ. वह शिक्षा क्या है? 'तत्वो मसि' ऐ मानव! तू वही है मगर तुझे ज्ञान नहीं. यदि उसे जानना चाहता है तो किसी मायातीत पुरुष की जो वही हो चुका हुआ है, की संगत कर.

संत कृपाल सिंह जी कहा करते हैं (मैन-इन-गॉड, गॉड-इन-मैन) जब तक आदमी उस अवस्था में नहीं पहुंचता या सुरत नहीं पहुंचती वह गॉड-इन-मैन है. मगर उसको पता नहीं है. सत्संग और साधन से मनुष्य जो मैन-इन-गॉड है वह गॉड-इन-मैन हो जाता है. इसलिये बाहरी गुरु की महिमा है मगर यह शिक्षा केवल उनके लिये है जो देह, मन और आत्मा के भान-बोध में जन्म-जन्मान्तर से फँसा हुआ है इससे निकलने की चाह है और जो अधिकारी हैं.

कोटि जन्म से धोखा खाया।बिन स्वामी योनि भरमाया।।

मनुष्य की सुरत स्वयं शब्द स्वरूप है अर्थात् शब्दब्रह्म (का स्वरूप) है मगर जानकारी नहीं कि कब से यह शब्दब्रह्म के भंडार से उतरी हुई अनेक लोक-लोकान्तरों से होती हुई सौभाग्य से मानव चोले में आई है. यहां इसे गुरु मिला. उसने इसको भेद बताया, तब वह अपने घर लौट जाने का अधिकारी हुआ।

दाव पड़ा मेरा अबके ऐसा।राधास्वामी चरण आय मैं परसा ।।

यह हुज़ूर महाराज की वाणी है. कहते हैं कि मनुष्य की सुरत जन्म-जन्मान्तरों से धक्के खा रही थी. इस जन्म में स्वामी जी से मिलाप हुआ. उनकी दया से अपने शब्द रूपी नाम में (जिसको मैं वाणी जाल से उत्पन्न इस धार्मिक पक्षपात को दूर करने के लिये, शब्दब्रह्म कहता हूँ), वासा हुआ. उसका ज्ञान और अनुभव हुआ. हर एक केन्द्र (चक्र) पर आनन्द को पूर्ण जान कर कोई जीव सबलब्रह्म में अटका हुआ है अर्थात् ज्योति स्वरूप या निरंजन के केन्द्र के जो आनन्द हैं उनमें फँस गया और कोई शुद्धब्रह्म अर्थात् मन की एकाग्रता के रंग में मस्त हो गया. कोई पारब्रह्म, कि मैं सोहंग पुरुष हूँ, में फँस गया. ऐसे ही दुनिया में देख लो. कोई सुंदर रूप का पुजारी है वह उसे नहीं छोड़ता. किसी में काम का अंग अधिक है. वह काम को नहीं छोड़ता. इसलिये आवश्यक है:-

गुरु खोजो री, जग में दुर्लभ रत्न यही।

पूर्ण गुरु उसे मिलता है जो मन में अपने समस्त प्रश्नों, इच्छाओं, वासनाओं से थक चुका है. मैं तो यहां तक कहूंगा कि अपनी निरख-परख करते रहो. अपने अनुभव से आप लाभ उठाते रहो. जब अपने अनुभव से लाभ उठाने की आदत आ जायेगी, फिर मनुष्य उस अनुभव से उस वस्तु को छोड़ने के लिये विवश हो जायेगा तथा कुछ और जानने की इच्छा करेगा. फिर डिमांड और सप्लाई (माँग और पूर्ति) के नियम के अनुसार तुम्हारे लिये कुदरत सामान पैदा कर देगी.

इसमें थोड़ी बेचैनी होती है अर्थात् एक आदत को छोड़ने और दूसरा ख्याल लेने में खींचतान होता

है. इसी को बेचैनी कहते हैं, इसी को विरह कहते हैं. जब विरह बढ़ जाती है तबः-
बिरह जलंती देख कर, सतगुरु आये धाय।प्रेम बूंद को छिड़क कर, अंग से लिया लगाय।।
ऐसा शब्द है।...
अब पाया मैंने अजर विलासा।क्या कहूं महिमा अधिक हुलासा।।
जब मनुष्य इस श्रेणी या अवस्था में पहुंच जाता है तो अजीब हुलास अर्थात खुशी होती है. इस अवस्था का नाम विलास है. वह कौन सी खुशी है? यही कि वह सदा अजर और अमर है. शब्दब्रह्म का नाम अजर और अमर है. जब इस शब्द को मनुष्य सुनता है, तब उसको निश्चय हो जाता है कि:-
रोम रोम रग रग मेरी बोली।राधास्वामी राधास्वामी घुंडी खोली।।
सारा संसार शब्दब्रह्म है. इसका ज्ञान हो जाता है अर्थात् राधास्वामी का रूप हो जाता है. राधा सुरत और स्वामी शब्द का नाम है. ये बाहरी शब्द हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपने भाव को प्रकट करता है. लोग शब्द को पकड़ते हैं मगर भाव को नहीं पकड़ते. एक आदमी राधास्वामी न कहे, न सही. शब्दब्रह्म या शब्द में जो उसकी सुरत की दशा होती है उसे किसी और शब्द से वर्णन कर दे, एक ही बात है. हर एक धर्म, पंथ के विशेष टेक्नीकल शब्द गढ़े हुए होते हैं. भाव को समझना चाहिये. किसी ने पत्र लिखा. बड़े-बड़े आदर सूचक शब्द लिख दिये. वह केवल भाव को प्रगट करते हैं. शब्दों पर न जाकर उनके भाव को समझने का प्रयत्न करना चाहिये.
रंग रँगी मेरे तन की चोली। सुन सुन धुन अब भई हूँ अमोली।।
तुम देखो जब तुमको खुशी मिलती है तो तुम्हारे शरीर में खुशी की लहर दौड़ती है. तो जब यह गति मिल जाती है तो देह और उनमें प्रफुल्लता आ जाती है, आनन्द मिल जाता है.
आनन्द तो सुरत को होता है. चूंकि वह शरीर में है इसका शरीर भी प्रफुल्लित हो जाता है. इसका अनुमान तुम सांसारिक कामों की सफलता के समय देख सकते हो. किसी पर मुक़द्दमा चल रहा है. जब वह जीत गया, उसका शरीर, आँख प्रसन्न होते हैं. जुबान के कथन में खुशी होती है तो उस असली अवस्था की खुशी का क्या ठिकाना!
घूम चली अब गगन मंझारा। सुन्न शिखर का झांका द्वारा।।
अन्तर में घूम जाती है अर्थात् जो सुन्न या शब्दब्रह्म की अवस्था है उसका उसका आनन्द मिल जाता है.
मान सरोवर किये अश्नाना। सत्त नाम सू लागा ध्याना।।
ये सब अवस्थायें गुजर जाती हैं. यह अभ्यास अधिक समय का नहीं है. मुझे चूंकि ज्ञान नहीं था मैं इन अवस्थाओं की बहुत सैर करता रहा. इस सैर को छुड़ाया तुम सत्संगियों ने. फिर असली वस्तु क्या है? शब्दब्रह्म या नाम या सत्नाम या निज नाम, कुछ कह लो. राधास्वामी कह लो. मैं स्वतन्त्र विचार का हूँ. स्वयं मैं राधास्वामी कहता हूँ उस शब्द को जैसे कोई अपने पिता को चचा

कहता है, कोई पिता, कोई भइया, कोई काका आदि. मुझे दाता दयाल ने राधास्वामी शब्द कहा, इसलिये मैं राधास्वामी कहता हूँ. दूसरों को मजबूर नहीं करता कि तुम भी राधास्वामी कहो. उसका कोई नाम नहीं है. सब नाम उसका रूप नहीं है. सब रूप उसके हैं. अभिप्राय तो केवल भाव से है.

महा सुन्न घाटी चढ़ भागी। सत्त पुरुष के चरनन लागी।।

वह सत् पुरुष पारब्रह्म, शब्दब्रह्म, अनुभव का रूप है.

हंसन साथ करूं अब आरत।प्रेम मगन होय दुक्ख बहावत।।

हंस--- पहले भी कहा करता हूँ. प्रकाश में अणु होते हैं. बाहर में सूर्य का प्रकाश किरणों द्वारा होता है. सूर्य की लाखों किरणें खेल रही हैं.

जिस तरह यहां सूर्य की किरणें फैली हुई खेलती हैं इसी तरह उस लोक में, जिसका अक्स हमारी खोपड़ी में है, उस पर पारब्रह्म की किरणें खेलती हैं. उन किरणों में हमारी सुरत प्रकाश रूप होती हुई खेलती है. मैंने समझा है.

यों भी देखो बाहरी संसार में अच्छा मौसम हो तो दुख भूल जाते हैं. वातावरण अच्छा हो तब भी दुख भूल जाते हैं. इसी प्रकार उस प्रकाश और शब्द के मंडल में जाकर प्रकाश की किरणें जो हंस रूप हैं वहां जाकर मनुष्य आनन्द में मगन होकर सब कुछ भूल जाता है. दुख-सुख क्या है? सुरत का किसी जगह जुड़ जाना सुख है. वहां से जबरदस्ती हटाया जाना दुख है. चूंकि शारीरिक और मानसिक जो दुख-सुख होते हैं अर्थात विचार का उठना, कुछ सोचना, सवाल पैदा होना, कुछ, क्यों, कैसे का विचार, ये समाप्त हो जाते हैं. इसलिये दुख उस स्थान पर समाप्त हो जाते हैं.

अमी अहार किया मैं भारी।छिन छिन दर्शन पुरुष निहारी।।

अमी अहार--- अमृत, जिसमें हंस है, उसका आनन्द लिया जाता है और पुरुष के दर्शन होते हैं. पुरुष वह है जिसमें स्थिति (मुसवत पना) और पुरुषार्थ है. पुरुष में रचना करने की शक्ति होती है तो रचना करने वाला कौन है? शब्द और प्रकाश. उस प्रकाश के भंडार के समूह को देखना ही पुरुष का दर्शन है. जो व्यक्ति इसको अपने अन्तर में देखता है, पारब्रह्म में रहता है. चूंकि शब्द और प्रकाश पुरुष है और उसमें किसी के पैदा करने की शक्ति है, इसलिये ऐसे पुरुष के वाक्य में, विचार में तथा आशीर्वाद में शक्ति होनी चाहिये. मैंने यह आज़माया हुआ है. जब कभी प्रकाश से उठता हूँ. तो जो बात स्वाभाविक मुँह से निकलती है पूरी हो जाती हे वह कौन करता है. मैं नहीं करता. वह प्रकाश और शब्द की सत्ता चूँकि बलवान होती है इसलिये ऐसे आदमी की जुबान में प्रभाव होता है. यह कुदरती नियम है.

शोभा बरनी न जाय अपारी। आरत पूरन हो गई सारी ।।

वहां की जो शोभा है वह वर्णन नहीं हो सकती. वहां पहुंचकर अंश पूर्ण से मिल जाता है. यह हुआ

तो पहले ही से है केवल भ्रम और अज्ञान मिल जाते हैं और जो खोल सुरत पर चढ़े होते हैं वे हट जाते हैं अर्थात् माया, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के जो खोल हैं जिन्होंने हमको अपने रूप से पृथक किया हुआ है या ढका हुआ है वे खुल जाते हैं. अंश का पूर्ण से मेल हो गया. दाता दयाल का शब्द हैः-

सिंध सद्गति से मिलाया, जीव रूपी मीन को।

गुरु अंश को पूर्ण से मिलाता है. इसलिये सत् पुरुष सदा उदार चित्त होते हैं. उदारता का नाम ही दयाल है.

धन धन धन धन क्या कहूं महिमा। राधास्वामी राधास्वामी पल-पल कहना।।

फिर राधास्वामी क्या हुआ! तुम्हारा अपना स्वरूप ही राधास्वामी है. गुरु यही करता है कि शिष्य को अपने जैसा बना लेता है.

नोटः- कुछ मिलिटरी साहिबान आये हुये हैं. उनको यह ख़ब्त है. एक बात बताये देता हूँ. यदि कुछ नहीं बनता तो किसी वीतराग पुरुष को अपनी खोपड़ी में रखो. रेडीयेशन का नियम व सत्संग स्वयं इष्ट पद पर पहुँचा देगा. यही पातंजलि योग शास्त्र में लिखा है. जब यह ज्ञान हो जायेगा कि वह तुम्हारा अपना ही आपा है तो बेड़ा पार है.

गुरु जो बसें बनारसी, शिष्य समुन्दर तीर।एक पलक बिछड़े नहीं, जो गुन होय शरीर।।

सत्संग प्रवचन (मानवता मन्दिर होशियारपुर)

नाममाला का शब्द (नाम और रचना का भेद)

अकह अगाध अपार अनामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी।।
हैरत रूप अथाह दवामी। अस मेरे राधास्वामी।।
अगम रूप धर आये अगामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी।।
अलख धाम के फिर हुये धामी। अस मेरे प्यारे राधास्वामी।।
सत्त लोक में हुये सतनामी। वह मेरे प्यारे राधास्वामी।।
भंवर गुफा बैठे अन्तरजामी। सो मेरे राधास्वामी।।
महासुन्न पर बैठक ठानी। अस मेरे प्यारे राधास्वामी ।।
सुन में अक्षर रूप मुकामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी।।
गगन मंडल ओंकार अकामी। अस मेरे प्यारे राधास्वामी।।
रूप निरंजन धारा श्यामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी।।
मन के घाट हुये अब कामी। अस मेरे प्यारे राधास्वामी।।
इन्द्री घाट बिकार घटामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी।।
स्थूल रूप घर जगत जगामी। अस मेरे प्यारे राधास्वामी ।।
त्रिगुन रूप जग रचा रमामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी।।
अललपच्छ सम फिर उलटामी। अस मेरे प्यारे राधास्वामी।।

पहुंचे फिर निज धाम अनामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी।।

वाणी कहती है कि राधास्वामी अनामी, अरंग अरूप की आदि अवस्था में थे जिसे अचरज रूप कहते हैं. मैं उस मालिक के मिलने की तड़प में दाता दयाल के दरबार में मौज से गया था. केवल इस ख्याल से कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, मेरे अन्तर जो रूप, रंग, दृश्य पैदा होते थे उनको तथा सहसदल कंवल, त्रिकुटी आदि को छोड़ने के लिये मैं विवश हुआ क्योंकि वह मुझे मायावी और कल्पित सिद्ध हुये. वे दृश्य आदि हमारे मन पर बाहय प्रभावों से या अपनी प्रकृति के कारण आते हैं. शब्द और प्रकाश से गुजरता हुआ जब इनसे आगे चलता हूँ तो फिर उस मालिक को समझने, देखने की शक्ति नहीं है. सिवाय अचरज के और कुछ नहीं है. जब वहां से उत्थान होता है, शब्द और प्रकाश की चेतनता आती है. वह अगम है. इसी प्रकार मेरी ही नहीं हर एक जीव की या हर एक मनुष्य की यही दशा है और प्रत्येक मनुष्य अपने हैरत या अचरज रूप की अवस्था से रचना के सिलसिले में इन्द्रिय घाट तक आ जाता है. यही बात स्वामी जी ने लिखी है:-

इन्द्री घाट होय वह कामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी।।

इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक जीव वही है जो राधास्वामी दयाल हैं. यहां आकर फिर वही सुरत जो अनामी देश या आश्चर्य देश से आई थी उलट कर वही हो जाती है जो वह पहले थी.

अललपच्छ सम फिर उलटामी।अस मेरे प्यारे राधास्वामी।।
फिर होय जस थे प्रथम अनामी।अस मेरे प्यारे राधास्वामी।।

अलख-अगम-सत से होता हुआ भंवरगुफा, सुन्न, महासुन्न, ओंकार और फिर नीचे इन्द्रियों में आकर फिर वापिस गया. तो फिर मेरे जीवन की रिसर्च यह सिद्ध करती है कि उस परमतत्त्व, अनामी, अकाल पुरुष की अवस्था से यह चेतन का बुलबुला प्रगट हुआ और उसी में समा गया. लब खुले और बन्द हुये, यह राज़े जिन्दगानी है.

यह मेरी रिसर्च है. तो जिस पवित्र विभूति ने या बाहर के गुरु ने मुझे या जीव को उसके अपने घर का पता दिया अर्थात् मति दी, मंत्रणा दी, वह राधास्वामी है. वही सत्गुरु है जो सच्चा ज्ञान देता है. राधास्वामी मत है राधास्वामी की राय. इसलिये उनकी महिमा है. वाणी में आता हैः-

महिमा इनकी कस कह गामी ।। अस मेरे प्यारे।।
बार बार मैं करूं प्रनामी ।। अस मेरे प्यारे।।
जोगी ज्ञानी मरम न जानी ।। अस मेरे प्यारे।।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश भुलानी ।। अस मेरे प्यारे।।
गौर सवित्री लक्ष्मी न जानी ।। अस मेरे प्यारे।।
शेष गनेश कुरम अज्ञानी ।। अस मेरे प्यारे।।
ऋषि मुनि नारदादि भटकानी ।। वाह मेरे प्यारे।।
सनक आदि पित्रादि न जानी ।। सो मेरे प्यारे ।।
देवी देव रहे पछितानी ।। अस मेरे प्यारे।।
ईश्वर परमेश्वर भरमानी ।। क्या मेरे प्यारे।।

वेद कतेब पुराण न दानी ।। मत मेरे प्यारे।।
चांद सूरज तारा जगनानी ।। जाने मेरे प्यारे ।।
अल्ला खुदा रसूल न मानी ।। अस मेरे प्यारे ।।
इन भी भेद नहीं पहिचानी ।। अस मेरे प्यारे ।।
गंगा जमुना सार न जानी ।। सो मेरे प्यारे ।।
तीरथ वरत जगत लपटानी ।। हे मेरे प्यारे ।।
तीन लोक सब काल चबानी ।। वाह मेरे प्यारे ।।
कोई न परखे तुम्हारी बानी ।। अस मेरे प्यारे ।।

अब संसार वालो! सोचो! मैंने जो खोज की है, क्या वह सत्य नहीं है. आज 80 वर्ष के बाद अपना अनुभव कहता हूँ कि जो कुछ वाणी में लिखा है वह ठीक है. इसकी सचाई का ज्ञान केवल गुरुपद आने से हुआ. जो लोग मेरा रूप अपने मन से या अपनी आत्मा से अपने अन्तर में बनाते है और मैं नहीं होता तो सिद्ध हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर जो वह है, वह और है और जो शक्ति उसकी रचना करती है, उसकी अंश है, वह उसकी सत्ता है इसलिये वह जो उस अनामी धाम, हैरत, अकाल पुरुष की सत्ता है वह रचना करती है. तमाम धर्म पंथ, हर प्रकार के योगी, हर प्रकार के विचारवान, किससे काम लेते हैं? वह है अपने आपकी सत्ता, जो मनरूपी उनके साथ रहती है और उससे काम लेते हैं. मनुष्य के अन्तर में उसका मन रचना करता है और ब्रह्मंड, ब्रह्मंडीय मन उस अकाल पुरुष परमतत्त्व, अनामी, आश्यर्चरूप की सत्ता है. तो स्वामी जी ने ठीक लिखा हैः-

लोक सब काल चबानी।। वाह मेरे प्यारे ।।
कोई न परखे तुमरी बानी ।। हे मेरे प्यारे ।।

प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय तथा पंथ वाले उस मालिक को अपने मन से अलग समझकर उसको पूजते हैं. कोई कहता है अन्तर में राम मिलता है कोई कहता है उसका अलग मंडल है, अलग लोक है. मैं भी ऐसा ही समझा करता था मगर जब सत्संगियों के कहने से ज्ञान हुआ कि वह अपने अन्तर सूर्य, चन्द्रमा, देवी, देवताओं के रूप देखते हैं और मेरा रूप भी देखते हैं मगर मैं नहीं होता तो मुझे निश्चय हो गया कि यह सब खेल इनके अपने ही काल रूपी मन का है. इसी प्रकार इस बाहरी रचना में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी देवता, लोक लोकान्तर सब ब्रह्मंडी मन काल ने बनाये हैं. जिस तरह मनुष्य का मन अपने अन्तर अपनी रचना करता है और वह रचना हमारी सुरत को भरमाती रहती है, इसी प्रकार यह बाहर की रचना हमको भरमाती रहती है, वास्तव में यह रचना उस असल अकाल पुरुष, दयाल पुरुष का प्रतिबिम्ब है और हम उस अकाल पुरुष या दयाल पुरुष की अंश है. यहां आकर अपनी रचना में और बाहरी रचना में इसे भूल गये. उस भूल को मिटाने के लिये यह परम संत सत्गुरु का रूप धारण करके जीवों को अपने घर पता देता है.

अब तुम सोचो कि सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सप्त ऋषि अथवा प्राकृतिक

शक्तियां तो बद्ध हैं, जैसे विशेष-विशेष काम इनके जिम्मे है वैसे ही उनके अन्तर शक्ति है. जब तक रचना का नियम है, वह उस समय तक अपने घर नहीं जा सकती, जब तक महाप्रलय न हो, मगर मनुष्य की सुरत पहले जा सकती है. इसलिये मनुष्य की श्रेणी इस दृष्टि से इन देवी देवताओं से या सप्त ऋषियों से बड़ी है. वाणी की अनसमझी से हम इस खंडन के गलत अर्थ लेते हैं. मैं भी ऐसा ही गलत अर्थ समझ कर दुखी हुआ करता था मगर अब समझ आई कि विष्णु का पुजारी विष्णु लोक में, शिव का पुजारी शिव लोक में, शक्ति का पुजारी शक्ति लोक में जायेगा मगर अपने घर नहीं जा सकता. इसलिए गुरु की महिमा है जो हमारे घर जाने का पता देता है. अतः असली पूजा गुरु की है, क्योंकि वह हमको हमारी असलियत कि हम क्या है, का पता देता है. गुरु पूजा केवल मत्था टेकना, फूल चढ़ाना और भेंट चढ़ाना ही नहीं है. यह तो केवल श्रद्धा विश्वास का प्रदर्शन है. वास्तव में गुरु की पूजा केवल श्रद्धा विश्वास का प्रदर्शन है. वास्तव में गुरु की पूजा उसकी बात को सुनना, गुनना और अमल करना है. वह अमल क्या है? अपना इष्ट सत्संग के वचनों को समझ कर वह रखे जो अलख, अपार और अनामी है या अकाल पुरुष है या परमतत्त्व, कूटस्थ है और उस तक पहुंचने के लिये पहले बाहरी गुरु का सत्संग है ताकि रहस्य ज्ञात हो जाय. फिर अपने अन्तर उस वस्तु को पकड़े जिससे यह समस्त लोक-लोकान्तर, ब्रह्मांड पैदा होते हैं. वे क्या हैं? किसने बनाये? हमारा वर्तमान विज्ञान सिद्ध करता है कि हर वस्तु की उत्पत्ति प्रकाश और शब्द से होती है. हिन्दू शास्त्र पारब्रह्म और शब्दब्रह्म मानते हैं. उद्‌गीय को मानते हैं. संत उसको नाम कहते हैं, अनहद वाणी कहते हैं. उसको पकड़ कर हम अपने अजर अमर, अकाल पुरुष में वापिस लय हो सकते हैं. यह मैंने समझा है. यदि यह सच प्रतीत न होती तो जहां मैं इस वाणी का समर्थन करता हूँ वहां खंडन कर जाता.

इस वाणी में ऐसे गुरु की महिमा लिखी है जो यह ज्ञान देता है.

दर्शन रस ले रहूं अघानी। वाह मेरे प्यारे ।।
चरण शरण में रहूं लिपटानी। अस मेरे प्यारे।।
दर्शन नैन रस रहूं तृप्तानी. वाह मेरे प्यारे।।

क्यों? क्यों? दर्शन रस ले रहूं अघानी.क्यों? चरन सरन में रहूं लिपटानी. इसलिये कि:-

वचन सुना दई अगम निशानी। वाह मेरे प्यारे।।
सुरत शब्द मारग दरसानी। अस मेरे प्यारे।।

केवल बाहर के पूर्ण गुरु से प्रेम और उसके दर्शन की आवश्यकता को महसूस किया गया. जब तक मनुष्य पूर्ण रूप से बात को नहीं समझता उसकी खोपड़ी में कोई बात नहीं बैठती. किसी के मन की दशा को, किसी की बुद्धि या आत्मिक अवस्था को बदलने के लिये बाहरी ख्याल या संस्कार अनिवार्य है.

इसलिये गुरु नाम है ज्ञान का, समझ का विवेक का. यह ज्ञान दिया जायगा बचन द्वारा, आदेश द्वारा दिया जायगा. प्रत्येक युग के लोगों की दिमागी हालत भिन्न होती है इसलिये दिमागी हालत

के अनुसार वचन कहे जाते हैं. मैं चूंकि वक्त का संत सतगुरु हूँ इसलिये इस कलयुग में, जब क्यों और कैसे के प्रश्न शिक्षित वर्ग में उठते रहते हैं, इनकी संतुष्टि के लिये मैंने सरल शब्दों के द्वारा वर्णन शैली को बदल दिया.

इसलिये कहते हैं--'गुरु ने चोला बदला'.

प्राचीन वर्णन शैली इस समय नये दिमाग वालों को तथा पुराने सत्संगियों को सन्तुष्टि नहीं दे सकती.

एक सच्चा उदाहरण सुनो. एक 40-50 वर्ष का सत्संगी है. वह इसलिये कई गुरुओं के पास घूमता रहा कि कोई गुरु उसकी सुरत को खेंच लेगा क्योंकि वाणी में लिखा है-- 'सुरत को खेंचे गुरु बलवान. लोग यह समझते हैं कि गुरु ने फूंक मार कर या मंत्र पढ़ कर किसी की सुरत को ऊंचे चढ़ा देना है और इस अज्ञानवश यह हजारों सत्संगी हर रोज गुरुओं के डेरों की परिक्रमा करते रहते हैं. मैं इसीलिए फकीर के चोले में आया हूँ कि संसार को सच्चा ज्ञान दे जाऊं. वाणी में जो लिखा है कि 'सुरत को खेंचे गुरु बलवान', तो सुरत को इस बात की समझ देनी है कि यह देह, मन और आत्मा का खेल और है और तू और है. जब तक यह समझ नहीं आयेगी तुम्हारी सुरत इस संसार चक्र में फंसी रहेगी अर्थात् तुम इस संसार को सच्चा मानते रहोगे. फिर गुरु बलवान वह है जो तुमको निश्चय करादे कि तुम और हो, यह रचना और है. यह निश्चय उसी समय आयेगा जब तुम पूर्ण पुरुष की सेवा करोगे. वह सेवा क्या है?:-

दर्शन करे बचन पुनि सुने। सुन सुन कर नित मन में गुने।।
गुन गुन काढ़ि लेय तिस सारा। काढ़ सार तिस करे अहारा।।
कर अहार पुष्ट हुआ भाई। जग भौ भय गये नसाई।।

पहले समय में जितने गुरु हुये, उन्होंने केवल अधिकार को देख कर, यह रहस्य बताया है. मैंने जीवों के दर्द को दिल में रखकर स्पष्ट वर्णन से काम लिया है ताकि 40-40, 50-50 साल के सत्संगी गुरुओं के डेरों के चक्कर न काटते रहें मगर ऐसे जीव जो वास्तव में अपने घर जाना चाहते हैं बहुत ही कम हैं. इसलिये सत्संग में गुरु के वचन की महिमा है और दया दृष्टि की आवश्यकता है. दया दृष्टि से अभिप्राय यह है कि मनुष्य के अन्तर में जो सहानुभुति का भाव होता है यह स्थूल रूप में शब्दों द्वारा निकलता है और सूक्ष्म रूप से दृष्टि से और हाथ फेरने से वह सहानुभूति का भाव एक हृदय से दूसरे के हृदय में प्रवेश होता है! जिस प्रकार व्यवहार में कोई पुरुष अपनी स्त्री को छाती से लगाता है वह गद्गद् हो जाती है. माता-पिता प्रेम से जब बच्चे को देखते हैं, प्यार करते हैं बच्चे का हृदय प्रफुल्लित हो जाता है. किसी पशु को प्रेम से थपथपाओ. कुत्ता, गाय, बैल कोई हो उनकी पूंछ उठ जाती है. शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं. यह है वचन की भक्ति और गुरु की दया. जब यह मिल जाती है, स्वामी जी का कथन है:-

भेद पाय मैं रहूं समानी

समानी से क्या अभिप्राय है? यही कि मनुष्य का सम अवस्था में आना. ज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य की दौड़-धूप समाप्त हो जाती है. यह है गुरु महिमा. तो अपने इष्ट को कई रूपों से देखा जाता है. कहीं पति और पत्नी का भाव होता है. कहीं पिता-पुत्र का भाव होता है. कहीं-कहीं चुम्बक और लोहे जैसा आकर्षण होता है. कहीं चन्द्रमा और चकोर का भाव होता है. यह भाव या प्रेम की अवस्थाओं के नाम है. जब यह ज्ञान हो जाता है तब-

कलमल दाग धुले व धुलानी। पाये मेरे प्यारे।।

कलियुग में बुद्धि का राज्य है. बुद्ध अवतार है जो एक ही होता है. बुद्धि पर खराद चढ़ जाती है. बुद्धि के प्रचंड हो जाने से मनुष्य अशान्त हो जाता है. अतः कलियुग में गुरु महिमा रखी गई है. जो सत्संग करा कर और सुरत को अन्तर के नाम की विधि बता कर उसको शान्ति दिलाता है. सच्ची बात समझ लेता है कि वह मालिक सारी सृष्टि का पैदाकर्ता है. वह शब्द और पारब्रह्म है. तू उस मालिक का अंश है. तू वही है भ्रम में आया हुआ है. यह जितने धर्म सम्प्रदायवादी हैं उनके कारण मानव जाति बंट गई. हम वास्तव में सब एक हैं. कोई अपने भ्रम से हिन्दू बना है, कोई मुसलमान, कोई सिख, कोई ईसाई आदि और लोग इस धार्मिक पक्षपात के कारण आपस में लड़-लड़ कर मर गये और मर रहे हैं.

अब मेरा भाग जगा जगजानी। वाह मेरे प्यारे।।

मैं अपने आपको भाग्यशाली समझता हूँ कि इस अनुभव से मुझे अपने घर का पता लग गया. वह है शब्दब्रह्म. चूंकि यह ज्ञान दाता दयाल की दया से मिला. इसलिये-

बारम्बार करूं परनामी। वाह मेरे प्यारे।।
धाम आपना भला दुरानी। तुम मेरे प्यारे।।

शब्द बड़ा लम्बा है. अब जो जीवन की दशा है इस जीवन में आज कल वह यह है कि अपने घर का पता है. सुरत अभी शरीर में है उसकी और खिंची रहती है.

खिंच रहूं मेरे प्यारे राधास्वामी।

इस शब्द में सबका खंडन है.

सीता रुकमिन और पटरानी। सुने न मेरे प्यारे राधास्वामी।।
ईसा मूसा मरियम मानी। चूके मेरे प्यारे राधास्वामी।।
पीर पैगम्बर गौस रबानी।मिले न मेरे प्यारे राधास्वामी।।
हिन्दू मुसलमान क्या जाने। सो मेरे प्यारे।।
नहिं धरती नहिं वहां असमानी। जहां मेरे प्यारे।।

ऐसे-ऐसे शब्द हैं. यहां तक कि--

सुन्न महासुन्न अलगानी। जहां मेरे प्यारे।।
भंवर गुफा सत लोक निचानी। ऊंचे मेरे प्यारे।।
अलख अलोक और अगम ठिकानी। तिस परे मेरे।।
और न कोई रहे निशानी. जहां मेरे राधास्वामी।।

अब सोचो राधास्वामी मत में या राधास्वामी की राय में ये जितनी श्रेणियां हैं-- भंवर गुफा, सुन्न, महासुन्न, अलख, सत, अगम, सबका ही खंडन है अर्थात् नीचे मानी जाती हैं. जिस दृष्टि, कारण से मेरी समझ में यह खंडन किया गया है वह यह है कि असलियत इतनी ऊंची है जहां जाकर यह कुछ नहीं रहता. न राम न कृष्ण, न गुरु न चेला, न पीर न पैग़म्बर. मैं स्वयं सोचता हूं कि क्या यह ठीक है. यदि ठीक है तो तेरे पास क्या प्रमाण है. केवल यह प्रमाण जो दाता दयाल की दया से मुझको मिला कि जो सज्जन यह कहते हैं कि वह सूर्य के प्रकाश के अन्तर प्रकाश के पद्म जैसे प्रकाशमय फूल पर इस फकीर को बैठे हुए देखते हैं उसका आधार हर मनुष्य की अपनी ही सुरत है. ऐ मानव! तू स्वयं पूर्ण है. तू अकह, अगाध और अनाम है मगर तुझको ज्ञान नहीं है. मुझे भी नहीं था. दाता दयाल कहा कहते थे--

तू है क्या तू मरकज़े आलम है ऐ मर्दे फकीर।
गिर्द तेरे फिर रही है दुनिया होकर के असीर।।

यह ज्ञान और निश्चय मुझको सत्संगियों से मिला क्योंकि वह अपनी दुनिया आप ही बनाते हैं. जैसा मैं हूं वैसे ही तुम हो. अपने रूप को पहचानो.

इस वाणी में सबका खंडन है. इस वर्णन शैली को मैं इस समय पसन्द नहीं करता. इससे विरोध पैदा होता है. मैं यह तो मानता हूँ कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ध्रुव, सप्तऋषि आदि जो देवता हैं यह अपने घर प्रलय से पहले नहीं जा सकते मगर मनुष्य जा सकता है. जो मनुष्य जिनके नाम जैसे ब्रह्मानंद, शिवानन्द आदि देवताओं के नाम पर रखे हुए हैं वे लोग तो अवश्य अपने घर जा सकते हैं मगर यह प्रकृति की शक्तियां प्रलय से पहले नहीं जा सकतीं. ये बद्ध हैं. यह विशेष मिशन को लेकर आये हैं. राम दशरथ पुत्र, कृष्ण वासुदेव पुत्र हुए थे अथवा मुहम्मद साहब जो अरब में पैदा हुए थे यह कह देना कि वे यहां नहीं पहुंचे मेरी समझ में इनके विषय में कोई कुछ नहीं कह सकता. मुझे क्या पता कि दाता दयाल महर्षि शिव कहां गये अथवा बाबा सावनसिंह कहां गये मगर जो लोग अब यह कहते हैं कि इनके अन्तर बाबा सावन सिंह या दाता दयाल या राम या कृष्ण आये तो वह यह सिद्ध कर रहे हैं कि न राम और न दाता दयाल, मुक्त हुये न बाबा सावनसिंह ही मुक्त हुये. यह भूल है. इसी भूल को मिटाने के लिये कि मानववंश इस बात को समझ ले कि तेरे अन्तर जो रूप प्रकट होते हैं इनके बनाने वाला तू आप है और इस अज्ञान के कारण मानव जाति विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में बंट गई है. मैंने विरोध की परवाह न करते हुये अपने निजी स्वार्थ, धन, मान और प्रतिष्ठा को त्याग कर सचाई का डंका बजाया है ताकि जो रूप-रंग मनुष्य के अंतर पैदा होते हैं, जो वास्तव में माया हैं, कल्पित हैं, इनको सत मानकर लुट न जाएं. अभी एक पत्र ग्लासगो से आया है. वह लिखता है कि 16-10-76 को सुबह के समय जब वह अभ्यास में था, उसके अन्तर मेरा रूप प्रगट हुआ. अब यदि वह यह समझ कर कि मैं उसके अन्दर में प्रगट हुआ हूँ और मैं स्पष्ट बात नहीं कहता और यह कहता हूँ कि मैं था तो वह मुझे भेंट देगा, रुपया

पैसा देगा. मेरे नाम का डंका बजायेगा.

इस स्पष्ट वर्णन से मैं यह समझता हूं कि 'मानवता मंदिर' में कोई पैसा न देगा अथवा मेरा वह मान न होगा जो गद्दी पतियों को मिलता है. मैं इसकी परवाह नहीं करता. मैं तो जीवों को उनके घर ले जाना चाहता हूँ ताकि आवागवन के चक्र से बच जाएं. मेरी शिक्षा, वास्तव में वही है जो कबीर तथा राधास्वामी की है जो इस कलियुग में मानव जाति की एकता के लिये आये थे. गुरु गोविन्दसिंह का कथन है-- 'सब मानव को एक पहचानो.' यह उन्हीं की शिक्षा है, उसकी वर्णन शैली बदल कर या गुरु के चोले को बदलकर सरल और स्पष्ट शब्दों में मैं दे रहा हूँ. जो इसे ठीक समझते हैं वे इसके प्रचार में सहायता कर सकते हैं.

ऐ सन्तमत के गुरुओ, महन्तो! यदि तुम्हारी अन्तर आत्मा कहती है कि मैं गलती पर हूँ तो मैं खुला चेलेंज देता हूँ कि मेरा खंडन कर जाओ. मुझे कोई अफ़सोस नहीं होगा.

राधास्वामी मत तथा कबीर मत की वाणियों में हमारे महापुरुषों का खंडन था. मैं दुःखी था. मैं समझना चाहता था कि रहस्य क्या है क्योंकि वाणियों से भेद ज्ञात नहीं होता था. मैंने उसका अनुभव कर लिया और उन वाणियों को सत्य समझता हूँ. हो सकता है मैं गलत हूँ और इस सचाई को प्रकट करने में, गलती खाई हो मगर मैं सत्यप्रिय आदमी हूं. जो कुछ मैंने समझा, अनुभव किया, कह चला हूं.

सत्संग प्रवचन (मानवता मन्दिर 22-11-1967)

नाम महिमा

मेरे घट का दिया गुरु ताला खोल। मैं सुनत रहूं नित बाला बोल।।
क्या कहूं सुरत शब्द की तोल। पहुंची जाय नाम के कोल।।
अधिक हुलास मिला जहं चोल। माया की सब निकसी पोल।।
कासे कहुं यह भेद अमोल। बिन गुरु कोई न कहता खोल।।
जीव बिचारे डांवा डोल। बिन गुरु भर न मन का डोल।।
मैं विरहिन मेरे हिरदे हौल। काम चढ़ाई मुझ पर रौल।।
मैं पकड़ी अब धुन की रोल। मार दिया सब माया गोल।।
जो गुरु भाखें मुझ से कौल। मन मूरख सिर मारी धौल।।
कौन करे उस धुन का मोल। उसके आगे सभी कुबोल।।
बजे सुहावन घट में ढोल। सुन सुन बोझ गिरा हुई हौल।।
पाई यह धुन करा टटोल। पहिर लिया अब प्रेम पटोल।।
अब नित झूलूं गगन हिंडोल। राधास्वामी अमी पिलाया झकझोल।।

इस प्रकार की वाणियों को सुन-सुन कर मैं दीवाना हुआ था. जीवन इसी खब्त में बीता. साधन से उठा था. आज मौज से सत्संग में यह शब्द निकलाः

मेरे घट का दिया गुरु ताला खोल।

यह ताला खुलना क्या है? जब कोई घर बन्द होता है तो हम ताला खोल कर अन्दर आ जाते हैं. हमारे ऊपर एक देह है, एक मन है, एक आत्मा है. यह सत-चित-आनन्द है. 'सत' शरीर, 'चित' संकल्प और 'आनन्द' हमारी प्रकाश स्वरूपी आत्मा है. ताला खोलने से अभिप्राय देह से, मन से और प्रकाश से परे जो वस्तु है उसको पाना है. मेरा ताला दाता दयाल महर्षि शिव ने दया करके खोल दिया. केवल सत्संगियों के इस कथनानुसार कि वे मेरा रूप अन्तर में देखते हैं, प्रकाश में भी और साक्षात् भी, तो मेरा ताला खुल गया. मेरा रूप तो देखा सत्संगियों ने मगर ताला मेरा खुला. इसलिये ताला तो मैंने लेखों, पुस्तकों तथा वचनों से खोल दिया है मगर अब अन्तर में जाना, शरीरिक, मानसिक और आत्मिक भान-बोध को अथवा इन द्वारों को पार करना यह जीव का अपना काम है मेरा नहीं है. न गुरु का है. गुरु ने ताला खोल दिया है मगर वह जो असली वस्तु इन तीन कमरों के परे है वहां तो वह जायगा जो इन कमरों देह, मन और आत्मा अर्थात् सत, चित और आनन्द को पार कर जायेगा. इन कमरों की जो शोभा सजावट है वह असली वस्तु को प्रगट नहीं होने देती. फंसने को तो इस माया ने मेरे लिये भी बहुत सामान बनाया हुआ था मगर दाता दयाल ने कोई संस्कार ही ऐसा दिया कि अब फंसता ही नहीं.

कोई समय था जब दाता दयाल की वाणी जो मेरे नाम थी पढ़ा करता था मगर समझ नहीं सकता था. वह एक जगह सत-चित-आनन्द के विषय पर लिखते हैं-- 'सब इन तीनों में फंसे, सतगुरु मिला न काहि'

अब समझ गया कि जो असली वस्तु है, असली तत्त्व है अथवा जो हम हैं, वह इस सत-चित-आनन्द, काल और माया का खेल है. मैं समझाता हूँ मगर समझने वाले नहीं हैं. यह मेरा कर्म भोग है कि मैंने प्रण किया था कि संत मत को समझूं. सचमुच पूछो तो अमली पहलू से हमारे अन्तर एक कुरेद है या किसी वस्तु की खोज है. वह कुरेद या खोज जब तक कोई इस देह, मन और आत्मा या प्रकाश में है समाप्त नहीं होगी. वह महापुरुष जो साधक है वह अपने अन्तर अपनी रहनी को देखे. तब उनको ज्ञात होगा कि मैं ठीक कहता हूं. यद्यपि अब मैं इन तीन कमरों से आगे जाता रहता हूँ और जब तक वहां रहता हूँ तब तक कोई कुरेद नहीं होती.

फिर इन तीनों कमरों में वापिस आता हूं, कुरेद फिर शुरू हो जाती है. यह मेरा अस्तित्व कुछ चाहता है. देह में रहो. भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी से बचाव की इच्छा तो अवश्य रहेगी. यदि कोई अन्य वासना नहीं रखते, संकल्प तो उठते ही हैं. मन किसी न किसी रूप में ठहरना चाहता है. उस ठहरने की इच्छा भी तो इच्छा है. अपने प्रकाश में रहते हो, आनन्द की चाह बढ़ी रहती है. वह इसी प्रकार है जैसे शराबी पहले थोड़ी पीता है फिर वह नशे को बढ़ाने की कोशिश करता है. इसलिये असली शान्ति, असली ठहराव वहां है, जहां फिर किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती. ताला खुलने के बाद अपने आपको उस अवस्था में रखना है जो तुम्हारा अपना ही स्वरूप है. यदि इस जीवन में उस घर का पता है तब तो आशा कर सकते हो कि शरीर की मृत्यु के बाद यह घर मिले. यदि इस

शरीर में रहते हुये तुम्हारा ताला नहीं खुला और वहां का साधन नहीं किया, तो मरने के बाद कैसे उसकी आशा कर सकते हो. इसलिये इसी जीवन में इस भेद या रहस्य को समझकर अपने आपको इस चौथे पद में ठहराने की कोशिश करो.

क्या कहूं सुरत शब्द की तोल।पहुंची जाय नाम के कोल (पास)।।

इस अवस्था में चले जाना नाम की प्राप्ति है. जितने और नाम हैं-- राम राम, राधास्वामी, पांच नाम, यह तो मन को इकट्ठा करने या एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने के साधन हैं. सुमिरन से शरीर रूपी कमरे से निकल कर आत्मा या प्रकाश रूपी कमरे में जाओगे. ब्रह्म में जाओगे. शब्द को सुनते हुये चौथे पद में जाओगे. यही सुमिरन, ध्यान और भजन का उद्देश्य है. जहां और बहुत से लाभ हैं वहां असली ध्येय यह है. स्वामी जी का कथन है--

नाम रहे चौथे पद माहीं। यह ढूंढे त्रिलोकी माहीं।।

अधिक हुलास मिला जहं चोल। माया की निकसी सब पोल।।

इस स्थान अथात् चौथे पद में हुलास अर्थात् आनन्द, उत्साह, साहस, अचिन्तपना, निःस्वार्थपना हो जाता है. यहां जाकर माया अर्थात् रचना की पोल खुल जाती है. फिर मनुष्य निकल जाता है. माया के रूप की समझ आ जाती है.

कासे कहूं यह भेद अमोल। बिन गुरु कोई न कहता खोल।।

इसलिये वाणी के रचयिता कहते हैं कि गुरु के अतिरिक्त इस पर्दे को कोई नहीं खोलता. मुझे दुनिया चाहे अहंकारी कहे क्योंकि मैंने अपने आपको संत सत्गुरु कहा है. क्यों कहा है? क्योंकि मैं गुप्त रहस्य, व असलियत प्रगट कर रहा हूँ. पर्दे खोल दिए, ताला खोल दिया अथवा कुंजी बता दी. अब कमरों में प्रवेश करना और उनसे पार होना तुम्हारा अपना काम है. मैं पीछै से धक्का बेशक लगा सकता हूँ. वह कैसे? सत्संग सुनते रहो. जो वचन कहता हूँ अथवा दूसरे जो महापुरुष कहते हैं, उनकी नित्य की चोट धक्के हैं. यों तो कुदरत भी धक्के मारती रहती है. कोई रिश्तेदार मर गया, घाटा पड़ गया, किसी रिश्तेदार ने या मित्र ने जिनके साथ भलाई की हुई थी, धोखा दिया. ये सब धक्के ही तो हैं. मास्टर तारासिंह आज मर गये. रेडियो पर सूचना सुनी. सोचा यह पवित्र मूर्ति जिसने सिखपने की टेक में अपनी नीयत से बड़ा काम किया, कहां गई? ऐसे ही हमने कौन यहां बैठे रहना है. इस प्रकार की घटनायें धक्के कहलाते हैं मगर हम हैं कि धक्के खाते हैं मगर दरवाजे के अन्दर नहीं जाते. दरवाजे को पकड़ कर खड़े हो जाते हैं. यह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुख या आनन्द की चाह आगे नहीं जाने देती. इसलिये सत्संग की महिमा है.

जीव विचारे डांवा ढोल।बिन गुरु भरे न मन का डोल।।

हर एक मनुष्य, चाहे कोई क्यों न हो, धनी, निर्धन से निर्धन, सब किसी न किसी प्रकार की अशान्ति, भ्रम, चिन्ता या वासना के चक्र में हैं. गुरु ज्ञान के सिवाय कोई बच नहीं सकता.

मैं विरहिन मेरे हिरदे हौल (डर)। काल चढ़ाई मुझ पर रौल (हल्ला)।।

यह हुज़ूर महाराज की वाणी है. मैं विरहिन-- किसी वस्तु की तड़प रखने वाले का नाम विरहन है. कोई स्त्री किसी पुरुष के वियोग में विरह करती है. कोई राम, भगवान के मिलने की विरह में है. किसी वस्तु की चाह है. यह चाह, देह, मन और आत्मा में रहते हुये किसी की समाप्त नहीं हो सकती. अस्थायी खुशी मिलेगी. जैसे बीमार है दुखी हो गया. स्वस्थ हो गया तो अस्थायी खुशी मिल गई. किसी को प्रेम से मिलते हो या आज कृष्ण के दर्शन हो गए, या बाबा फकीर के दर्शन हो गए, उस समय विरह समाप्त हो गई मगर कृष्ण या राम हर समय तुम्हारे साथ नहीं रहेगा. आज प्रकाशमय हो गये. फिर खेल समाप्त हो गया. सन्त कहते हैं और मेरा अनुभव कहता है कि इन तीन कमरों में रहने वाला यह चाहे कि वह हमेशा अडोल होकर रहे तो असम्भव है. अतः अजर, अमर अविनाशी सुख के लिये यह नाम दान है. त्रिगुणात्मक जगत रहते हुये स्थायी सुख नहीं है. यह काल और माया की सृष्टि है. एक रस जीवन न किसी संत का रह सकता है, न किसी अवतार का और न किसी महापुरुष का. राम अवतार थे. सीता के वियोग पर और लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर दुखी हुये. इसलिये गुरु मत की आवश्यकता है. गुरु मत क्या है? यही कि यह संसार त्रिगुणात्मक जगत सत, चित और आनन्द के जगत में स्थायी सुख नहीं है. इस काल और माया के देश में उस सुख की आस रखना भूल है. अस्थायी सुख मिलेगा. अजर अमरपने का सुख यहां नहीं है.

मैं पकड़ी अब धुन की रोल। मार दिया सब माया गोल (समूह)।।

तो वह धुन क्या है. यह शब्द है. सनातन धर्म में उसे शब्दब्रह्म कहते हैं. 'गरुड़ पुराण' में स्पष्ट लिखा है कि कोई जीव यमराज, धर्मराज और चित्रगुप्त के चक्र से दूसरे अर्थों में आवागमन से नहीं बच सकता, जब तक वह पारब्रह्म और शब्द ब्रह्म के देश में न जायगा. पारब्रह्म देश देवयान पंथ है. जब तक मरते समय मनुष्य की सुरत देवयान पंथ से नहीं जाती उसको स्थायी छुटकारा नहीं हो सकता. उससे निकालने वाला कौन है? गुरु, जो ताला खोल देता है. यही इस शब्द में है.

अतः बिना नाम के, बिना शब्द के, बिना शब्दब्रह्म की प्राप्ति के लाख कोई सिर पटक कर मर जाय सुरत अपने निज घर जो अमर और अविनाशी है, जा नहीं सकती.

जो गुरु भाखें मुझसे कौल (बचन)। मन मूरख सिर मारी धौल।।

हुज़ूर महाराज कहते हैं कि स्वामी जी ने मुझे उपदेश दिया था. इसे समझ कर मैं इस मन के चक्र में फंसता नहीं. सत्संगियो! वाणी के सार को मैंने संसार के सामने खोल दिया है. लाभ उठाना, अमल करना यह आपका काम है मेरा काम नहीं है. सम्भव है मेरे सत्संग के वचनों से तुमको धक्के मिलते रहें मगर अन्तर में तो तुमने अपनी इच्छा से जाना है.

कौन करे उस धुन का मोल।उसके आगे सभी कुबोल।।

अब शब्दब्रह्म की महिमा सनातन धर्म ने कितनी गाई है. राधास्वामी मत वालों ने उसे नाम कह दिया. मैं चाहता हूँ सनातनधर्मी बात को समझें. उनके ऋषि जो भारी ख़ज़ाना दे गये उससे वे

वंचित हैं. यदि मैं आज राधास्वामी मत में न आता, दाता दयाल महर्षि शिव की शरण न मिलती तो मैं अपने धर्म से ही विमुख हुआ था.

बजे सुहावन घट में ढोल। सुन सुन बोझ गिरा हुइ हौल।।

घट के शब्दब्रहम या नाम, जो चौथे पद में होता है, को सुनकर हौली या केवल हो गई. किसी विरह, किसी चाह, किसी लालसा का जो बोझ था मन के ऊपर, वह हल्का हो गया. जिस तरह किसी स्त्री का पति या पुत्र परदेश में हो तो वह आहें भरती है, जब मिल जाता है उसकी आहें समाप्त हो जाती हैं. इसी को कहते हैं हल्का होना.

पाई यह धुन करी टटोल। पहिर लिया अब प्रेम पटोल (वस्त्र)।।

इसमें जब सुरत चली जाती है तो वह खोज करती चलती है. इसे ही टटोलना कहते हैं. तुम ध्यान करते हो तो ध्यान करने में जो तुम्हारा मन चलता है मूर्ति बनाता है वह उसका चलना या मूर्ति बनाना टटोलना है.

अब नित झूलूं गगन हिंडोल। राधास्वामी अमी पिलाया झकझोल।।

वहां शब्दब्रहम या नाम में मिलकर अपने अजर अमरपने की दशा में आना ही अमृत पीना है. यह किसने बताया? दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज ने. जिसके गुरु ने जिसको यह रहस्य बता दिया उसके लिये वही गुरु राधास्वामी है. इस समय यह सनातन धर्म के शब्दब्रहम की असली शिक्षा और सन्त मत की असली शिक्षा लुप्त है. कोई सत्यता का प्रचार रहीं करता सिवाय विशेष-विशेष महापुरुषों के. मैंने तो ताला खोलने की कोशिश की. प्राचीन समय में विशेष व्यक्तियों के ताले खोले गये होंगे. मैंने दया और हित की भावना से बात स्पष्ट करके बता दी.

सत्संग प्रवचन (मानवता मन्दिर 21-12-1967)

बन्धन

बंधे तुम गाढ़े बन्धन आन।।
पहिले बन्धन पड़ा देह का। दूसर तिरिया जान।।
तीसर बन्धन पुत्र विचारो। चौथा नाती मान।।
नाती के कहिं नाती होवे। फिर कहो कौन ठिकान।।
धन संपति और हाट हवेली। यह बन्धन क्या करूं बखान।।
चौलड़ पचलड़ सतलड़ रसरी। बांध लिया अब बहु विधि तान।।
कैसे छूटन होय तुम्हारा। गहरे खूंटे गढ़े निदान।।
मरे बिना तुम छूटो नांही। जीते जी तुम सुनो न कान।।
जगत लाज और कुल मरजादा. यह बन्धन सब ऊपर ठान।।
लीक पुरानी कभी न छोड़ो। जो छोड़ो तो जग की हान।।
क्या क्या कहूं मैं विपत तुम्हारी। भटको जोनी भूत मसान।।
तुम तो जगत सत्य कर पकड़ा। क्यों कर पावो नाम निशान।।

बेड़ी तौक हथकड़ी बांधे। काल कोठरी कष्ट समान।।
काल दुष्ट तुम बहु बिधि बांधा। तुम खुश होके रहो गलतान।।
ऐसे मूरख दुःख सुख जाना। क्या कहूं अजब सुजान।।
शरम करो कुछ लज्जा ठानो। नहिं जमपुर का भोगो डान।।
राधास्वामी सरन गहो अब। तो कुछ पाओ उन से दान।।

बन्धन का रूप क्या है? जितने मन के अन्तर भाव विचार पैदा होते हैं तथा रूप-रंग पैदा होते हैं, मनुष्य उनको सत्य मानता है. इनके सत्य मानने से वह दुःख-सुख, आनन्द-शोक प्रतीत करता है. केवल एक ख्याल ने कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, मेरे बन्धन काट दिये. निश्चय हो गया कि लोगों के अन्तर जो बाबा फकीर का रूप बनता है, दवायें बताता है, मरते समय ले जाता है, यह प्रत्येक जीव की अपनी ही माया है. यह जितनी रचना है यह सब संकल्प मय है. जैसा ख्याल वैसा हाल. जैसी मति वैसी गति. जैसी करनी वैसी भरनी. यही शास्त्र कहते हैं कि माया ने सारा संसार रचा है. माया ही फंसाती है और माया ही स्वतन्त्र करती है. माया का विस्तार वर्णन करते हुये तुलसीदास जी रामायण में लिखते हैं:-

गो गोचर जहं जग मन जाई। तहं लग माया समझो भाई।

दूसरे तो शायद न समझ सकें क्योंकि वे अभी तक मन और मन के संकल्प विकल्पों को सत्य मान रहे हैं और इससे निकले नहीं. वह क्या समझेंगे कि माया अर्थात् संकल्प और विचारों से परे क्या है. क्या आगे कुछ है या कुछ नहीं है? आगे है हमारा चेतन रूप जो प्रकाश और शब्द स्वरूप है. वही आत्मा है. यही बात स्वामी जी कहते हैं:-

तुमने जगत सत्य कर पकड़ा। क्यों कर पाओ नाम निशान।।

यह बात सिद्ध करती है कि हमारा अपना रूप या जो हम हैं वह प्रकाश या पारब्रह्म और शब्द या शब्दब्रह्म है. मैं इस अवस्था में रहता हुआ अभी किसी वस्तु की खोज करता रहता हूं. यह मेरा अनुभव है. प्रकाश और शब्द रूप होता हुआ मेरा अस्तित्व भी किसी अज्ञात वस्तु को तलाश करता रहता है. उस वस्तु की खोज करता हुआ कभी किसी समय साधन में मैं प्रकाश और शब्द के मंडल को भूल जाता हूँ. क्या रह जाता है? न मैं न तू, न प्रकाश न शब्द अर्थात् ऐसी अवस्था आ जाती है जहां न ब्रह्म है न पारब्रह्म न शब्दब्रह्म. फिर होश आता है. सोचता हूँ इसका उत्तर केवल अचरज या खामोशी के सिवाय कुछ नहीं. यही बात स्वामी जी ने कही हैः-

हैरत हैरत हैरत होई। हैरत रूप धरा अस कोई।।

मेरे अनुभव में यही आया है कि जीवन एक चेतन का बुलबुला है. वह बनता रहता है और बिगड़ता रहता है. मालिक का रूप मुझे तो कुछ समझ नहीं आया. अन्तिम परिणाम खामोशी (मौन हो जाना) निकला. तो यह संसार ऐसा ही है. दुनिया बनती है बिगड़ती है. अन्त नहीं मिलता. इतना ही मिला कि वह अनन्त या बेअन्त है. इस अवस्था का ज्ञान रखते हुये जीवन स्वाभाविक रूप से स्वयं व्यतीत हो रहा है. पहले भी था मगर उस समय बुद्धि अर्थात् माया नाच नचाती थी. भ्रम में

आकर दौड़ता फिरता था. अब वह भाग-दौड़ समाप्त हो गई. गुरु-चेला, धर्म-कर्म, योग, जप, तप सब माया है. मालिक का धन्यवाद है कि मैं इस जाल से निकल गया. यह या तो मेरा प्रालब्ध कर्म है या यों कहूं कि मौज का काम है जो मुझसे यह खेल खिला रही है. मुझसे ही नहीं, हर एक जीव जन्तु से, हर एक मनुष्य से, पशु से, देवी देवता से, ईश्वर-परमेश्वर से यह खेल खिलाया जा रहा है. जैसी-जैसी उसकी मौज है होता रहा है और होता रहेगा. बस! इस अनुभव से क्या मिला? मिलना क्या था, भ्रम का दूर होना था? अज्ञान समाप्त हो गया. जिस बाह्य पुरुष की दया से यह अनुभव आ जाता है, माया के खेल में हम उसको गुरु कहते हैं यद्यपि यह गुरु कहना या चेला बनाना भी आज भ्रम मालूम होता है. यह मेरी खोज या रिसर्च का परिणाम है. सुरत-शब्द के साधन से, सत्संग से यह मिला. आरती के शब्द में भी यही बात आई है-

सतयुग त्रेता द्वापर बीता। काहु न जानी शब्द की रीता।।
(दाता जाने इसका अर्थ क्या है?)
सब में अज्ञान का भास हुआ।।
कलियुग में स्वामी दया विचारी।परगट करके शब्द पुकारी।।
विद्या सत ज्ञान का भास हुआ।।

तो सुरत-शब्द योग के साधन से जो सत्ज्ञान मुझको हुआ, मैं वह कहता हूँ. कोई और सत्ज्ञान हो तो मुझे उसका पता नहीं. यह दुनिया जैसी है वैसी ही रहेगी. न कोई इसे ठीक कर सका, न ठीक कर सकेगा. अपने आपको ज्ञान मिल गया. शान्ति मिल गई. दाता दयाल ने यह ज्ञान देने के लिए रोचक और भयानक खेल मेरे साथ खेले. एक जगह लिखते हैं--

जग के प्राणी तेरा रूप हैं, मेट दे इनका तपना। --सोचता हूँ कि क्या मैं जगत के प्राणियों का तपना मिटा सकता हूँ. नहीं. अपना तपना मिट गया. मेरे लिये सबका तपना मिट गया. मैंने भ्रम में आकर बहुत से काम किये. यह जो कुछ मैंने किया, लिखा, सत्संग कराया यह सब अपना ही भ्रम था. कितने तर गये! बात सच्ची कहता हूँ. मगर इस सचाई को हर एक आदमी समझ नहीं सकता. हाँ जिस ज्ञान और जिस अनुभव से मुझे शान्ति मिली, सम्भव है मेरे सत्संग तथा रेडियेशन से दूसरों को भी शान्ति मिलती हो. यह वे जानते होंगे जो मेरा सत्संग करते हैं.

संत साध महिमा

ले. परम संत दयाल फकीर साहब

इस संसार में धार्मिक जगत में संत और साधु, ऋषि-मुनियों की बड़ी महिमा है. यहां तक कि राजे महाराजे, बड़े-बड़े बहादुर, लाखों धनी और निर्धन लोग साधु और संत या ऋषियों का सम्मान करते हैं. सोचता था कि कुछ तो यह रीति रिवाज़ से यह ख्याल मिला हुआ है इसलिये आदर मान करते हैं; कुछ धार्मिक दुनिया वालों ने एक ऐसा जाल फैलाया हुआ है कि इस जाल के चक्र में आकर यह

साधु-संत का सम्मान एक रस्म हो गई है. यह क्यों कहता हूँ. क्योंकि मैंने कई साधु-संत देखे जिनकी रहनी या आचरण ठगों से भी बुरा है मगर चूंकि वे साधु या सन्त के भेष में हैं और साधु और सन्त का नाम एक ऊंचा माना जाता है, लोग उनका आदर करते हैं. हां अब नई बुद्धि वाले तिरस्कार कर रहे हैं यद्यपि लोकलाज, कुलमर्यादा के वश में चुप हैं मगर दिल में मान नहीं है. एक सच्चे मनुष्य की हैसियत में मैं सोचता हूँ कि इस समय में जब मौजूदा वैज्ञानिक बम बनाकर दुनिया का विनाश करके बता सकते हैं, बिजली बनाकर प्रकाश कर सकते हैं, यह वर्तमान साइंस तो हथेली पर सरसों जमाकर लोगों को आश्चर्य में डालती है तो संत और साधु क्या करते हैं? मैंने सन्त-साधु की महिमा, जो कुछ समझी, वह वर्णन करता हूँ. सन्त और साधु मानसिक और आत्मिक दुर्बलताओं के कारण अशान्त, दुखी और भ्रमवश प्राणियों के मानसिक और आत्मिक दुखों को बदल कर आनन्द और शान्ति देते हैं. यही महिमा साध-सन्त की है. इनकी क़द्र केवल दुखी, अशान्त और भ्रान्तमय जीव करते हैं. वैज्ञानिकों की क़द्र भौतिक जगत के इच्छुक करते हैं.

मेरा जीवन सामने आता है. यह वही फकीरचन्द है जो छोटी अवस्था में कुछ ग़लतियाँ करने के कारण अशान्त तथा दुखी हुआ था. आज दाता दयाल की दया से अपने आपको पाप-पुण्य के कर्तापने से स्वतंत्र समझता हूँ. यह भी सन्त की महिमा है. जीव अपने आपको पापी, निर्धन, समझता है, दुखी होता है. साधु-सन्त की दया से उस दुख से बच सकता है. वह कैसे बचाता है? अपनी मानसिक और आत्मिक शक्ति के प्रयोग से, बशर्ते कि कोई विश्वास और प्रेम से उसकी बात को समझे और अमल करे.

इसके अतिरिक्त साधु-सन्त या ऋषि वह उपाय बताते हैं जिस पर आचरण करने से जीव दुख, अशान्ति और भ्रम में नहीं आता है. आजकल के जितने सन्त महात्मा है, यदि वे सचमुच सन्त महात्मा हैं तो उनकी आज्ञानुसार अमल करने से जीव बहुत हद तक दुखों, अशान्तियों और भ्रान्तियों से बच सकता है. मैं सन्त सत्गुरु की हैसियत से काम करता हूँ. संसार के प्राणियों के लिये असली और सच्चा, मार्ग, जिस पर चलने से उनकी घरेलू सामाजिक और राष्ट्रीय आपत्तियां दूर हो सकती हैं बताता हूँ. इन सब युक्तियों का मैंने एक ही नाम रखा है-- 'इन्सान बनो'. इन्सानियत या मानवता क्या है? इसमें सब युक्तियां शामिल हैं. मैं सोचता हूँ कि क्या तेरी युक्ति, पोलीटिकल, सोशल और घरेलू जीवन में लाभप्रद हो सकती है. उत्तर है 'हाँ', अवश्य हो सकती है बशर्ते कि कोई अमल करे. संक्षेप में वे युक्तियां ये हैं:-

प्रथम-- होम पीस (घरेलू शाँति).

दोयम-- अपनी आमदनी से अधिक खर्च न करो. लोकलाज में आकर अनावश्यक रस्मों में और खर्च न करो.

तृतीय-- मानसिक और शारीरिक ब्रह्मचर्य का पालन करो.

चतुर्थ-- अच्छी संतान पैदा करो. उतनी करो जिसे संभाल सको.

पंचम-- धार्मिक विरोध और पक्षपात छोड़ दो. सब धर्मों का उद्देश्य एक ही है. वर्णन शैली भिन्न-भिन्न है.

छटवें-- मन चंचल है. इसको रोकने के लिये कोई न कोई आइडियल रखो. बेकार न रहो.

सातवें-- पोलीटिकल लाइन में मौजूदा चुनाव पद्धति मीठा ज़हर है. इसको बदल दो. मैं पहले बहुत कुछ अपनी पुस्तकों में लिख चुका हूँ क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को, हर परिवार को, हर देश को वह मिलता है जैसे उसके भाव, विचार और कर्म होते हैं.

सत्संग प्रवचन (मानवता मन्दिर दिसम्बर, 1967)

सुखधाम

तेरी दया का दृढ़ विश्वास हुआ। चरणों में पड़ा निज दास हुआ।।
करूं बिनती दोऊ कर जोरी। अर्ज सुनो राधास्वामी मोरी।।
संसार से सहज उदास हुआ ।। तेरी दया।।
सत्त पुरुष तुम सत गुरु दाता, सब जीवन के पितु और माता।।
ढारस बांधी, घट में उजास हुआ।।
दया धार अपना कर लीजे, काल जाल से न्यारा कीजे।।
तब समझूंगा माया का नाश हुआ।।
सतगुग, त्रेता, द्वापर बीता, काहू न जानी शब्द की रीता।।
सब में अज्ञान का वास हुआ।।
कलयुग में स्वामी दया विचारी, परगट करके शब्द पुकारी।।
विद्या सत ज्ञान का भास हुआ।।
जीव काज स्वामी जग में आये, भव सागर से पार लगाये।।
तब दुखी जीव सुखरास हुआ।।
तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा, सत्त नाम सतगुरु गति चीन्हा।।घ्
अनुभव का आप विकास हुआ।।
जगमग जोत होत उजियारा, गगन सोत पर चन्द्र निहारा।।
घट ब्रह्मरेंन्द्र कैलास हुआ।।
सेत सिंहासन छत्र बिराजै, अनहद शब्द गैब धुन गाजै।।
हिया उमगा हरष हुलास हुआ।।
क्षर अक्षर निःअक्षर पारा, बिनती करै जहां दास तुम्हारा।।
पृथ्वी छुटी गुजर आकाश हुआ।।
लोक अलोक पाऊं सुखधामा, चरन शरन दीजै विश्रामा।।
राधास्वामी चरन निवास हुआ।।

यह आरती का शब्द सत्संग में पढ़ा गया. बचपन से जो प्रेम पूर्वक आरती करने तथा भक्ति करने

का भाव था समाप्त हो रहा है. दिमाग में सिवाये प्रकाश या शब्द के कुछ नहीं रहता. इस अवस्था में क्या विनती करूं, किस की विनती करूं और क्यों करूं! यह अवस्था दिमाग में छाई रहती है. कभी होश में आता हूँ तो बाहरी प्रभावों से अवश्य प्रभावित होता हूँ. साधारण विचार आते रहते हैं. यह मेरा परिणाम हो रहा है. जब चैतन्यता आती है तो कोशिश करता हूँ कि फिर वही भक्ति का या प्रेम का भाव आये मगर जो अनुभव मुझे हुआ, वह अब इस ओर आने नहीं देता. यदि आता हूँ तो सुरत तुरन्त ही इस ऊंची अवस्था में जाकर अपनी 'मैं' को या व्यक्तिगत अस्तित्व को भूल जाती है. यह 'मैं' का व्यक्तिगत अस्तित्व भूलने का कारण है. यह केवल सत्संगियों की दया है जिन्होंने यह कहा या कहते हैं कि मैं उनके अन्तर में प्रगट होता हूँ. केवल इस ज्ञान ने मेरे जीवन को बदल डाला. मालूम नहीं यह दिमाग की खराबी है या जीवन का यही परिणाम है. सन्तों की वाणियों की सहायता से हौसला होता है कि मैं गलती पर नहीं हूँ, इस आरती के शब्द में आता है-

लोक अलोक पाऊं सुख धामा। चरण शरण दीजे विसरामा।।
राधास्वामी चरण निवास हुआ।।

लोक और अलोक का क्या सुख धाम है? लोक में व्यक्तित्व रहता है और अलोक में व्यक्तित्व नहीं रहता जिसका व्यक्तित्व अर्थात् अहंपना लोक में समाप्त हो गया उसका लोक-अलोक एक हो गया. मुझे अभी प्रालब्ध कर्म खेल खिलाते हैं. सांप मर गया पूंछ हिलती है. यह सुरत शब्द योग की अन्तिम मंजिल या अवस्था का परिणाम है. सुरत शब्द योग क्या है? सुरत का शब्दब्रहममय हो जाना. राधास्वामी दयाल ने वाणी में लिखा है-

सुरत शब्द दोऊ अनुभव रूपा। तू तो पड़ा भरम में कूपा।।

आत्म अनुभव, सेल्फरीयलाइज़ेशन (Self realization), अन्तिम अवस्था है. यही संस्कार दाता दयाल ने मुझको दिया था. एक शब्द में लिखते हैं-

फकीरा! रूप तेरा अति प्यारा।।
तू सत चित आनन्द की मूरति, तू तीनों से न्यारा।।
तेरी गति बुद्ध न जाने, अटक रही मंझधारा।।
कर्म किया सत की चढ़ा घाटी, चित में विवेक विचारा।।
सत्त चित आनन्द विलासा, चहुंदिश हर्ष अपारा।।
नहिं तू दोय न तीन चार है, नहिं है सहस हजारा।।
एक एक है एक एक है, जाने जानन हारा ।।
यह अनेक कहां है मुझमें यह भी भूल विकारा।।
राधास्वामी रूप लख अपना, तू व्यापक संसारा ।।

इस शब्द को यदि ध्यान पूर्वक समझो तो निष्कर्ष यही है. मेरा ही नहीं प्रत्येक मनुष्य का आधार, जहां से हम आये हैं वह अनन्त, अविनाशी सर्वव्यापक है, जहां पहुंच कर सर्वव्यापक होने का अनुभव भी नहीं रहता. यह शब्द सर्वव्यापकपना उस अवस्था को समझाने का इशारा करता है. फिर हम सब कौन हैं? वह परमतत्व आधार क्या है? वह अनिर्वचनीय है. जुबान गूंगी, बुद्धि अबुद्धि, चित अचित, अहंभाव निःअहंभाव हो जाता है. कोई क्या कहे! जब तक हम यह विचार कर

सकते है कि हम कौन हैं, हम चेतन के बुलबुले हैं, यह जो कुछ हो रहा है रचना है, यह सब माया है.

क्षोभ है. इस क्षोभ में आने से उस मौज में गिरहें बन जाती हैं, केन्द्र बन जाते हैं. कोई सूर्य का केन्द्र, कोई चंद्रमा का केंद्र, कोई विष्णु लोक का, कोई ब्रह्म लोक का, फिर इन केंद्रों में करोड़ों प्रकार के केन्द्र बनते हैं और टूटते हैं. जिस तरह तुम्हारे शरीर के केन्द्र हैं. करोड़ों प्रकार के कीटाणु अपना केन्द्र बनाते रहते हैं. जब यह केन्द्र बन जाता है, चाहे कोई केन्द्र हो, उसमें 'मैं' पना आ जाता है और यह 'मैं पना' माया है.

गुरु की संगत से और सुरत शब्द योग के साधन के साथ ज्ञान से वह माया नाश हो जाती है. केन्द्र टूट जाता है. यह मेरा अनुभव है. अब मेरी यात्रा (सफ़र) समाप्त हो रही है. जो समझा या अनुभव हुआ वह वर्णन कर दिया. होश की दशा में कहना पड़ता है-

तेरी दया का दृढ़ विश्वास हुआ। चरणों में पड़ा निज दास हुआ।।

सत्संग प्रवचन (मानवता मन्दिर 18-12-1967)

संसार असार कैसे है

अरे मन देख कहां संसार। झूठे भर्म हुआ बीमार।।
भरे तेरे मन में सभी विकार। जतन से इनको दूर निकार।।
होय फिर झूठा जगत असार। गहो फिर गुरु के चरन सम्हार।।
मिले तब उनसे नाम अपार। देख फिर घट में मोक्ष दुवार।।
चलो फिर शब्द विचार विचार। पाओ इक शब्द सार का सार।।
पड़े क्यों भटको नैननवार। झांक तिल खिड़की उतरो पार।।
गुरु से लेना जुक्ती यार। गुरु बिन नहीं खुले यह द्वार।।
कमाना जुक्ती तुम कर प्यार। लगाना सुरत सहज मन मार।।
चले फिर सूरत धुन की लार। चुये जहं पलपल अमृत धार।।
नाम रस पियो रहो हुशियार। ऋद्धि और सिद्ध रहें तेरे द्वार।।
करो मत उनको अंगीकार। वहां से आगे धरो पियार।।
चलो और देखो घट का सार। पहुंचना राधास्वामी के दरबार।।

यह ठीक है कि यह संसार सदा नहीं रहता. दृष्टि का विषय है. संसार को देखो तो भासता है. यदि ध्यान दूसरी ओर कर दो तो संसार नहीं भासता मगर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि संसार नहीं रहता. संसार तो जैसा है वैसा मौजूद है. तो यह संसार भ्रम नहीं है. है. हम या वेदान्ती अपने ख्याल से इसे मिथ्या कह देते हैं.

फिर असली बात क्या है? तुमको इस संसार में दुःख है. दुःख तुमको भासता है. दुखी होते हो. अपने विचार को बदल दो. दुःख न रहेगा. विचार को बदलता ही कठिन है. इसको बदलने के

लिये सुमिरन, ध्यान और भजन है. दुनिया को न किसी ने बदला न बदली जा सकती है. मैंने ऐसा समझा है. दुनिया को कोई बदल नहीं सकता. अपना विचार बदला जा सकता है. जैसा तुम्हारा विचार है दुनिया तुमको वैसी ही प्रतीत होती है. चोर को दुनिया चोर दृष्टिगोचर होती है. सुखिया को सारा संसार सुखी दिखाई पड़ता है. इसलिये गुरु की संगत की आवश्यकता है. गुरु क्या करता है-

भरे तेरे मन में सभी विकार। जतन से इनको दूर निकार।।

वह विकार क्या है. हमारे जो विचार उठते रहते हैं वह विकार है. अच्छे विचारों को लो. संसार तुम्हारे लिये अच्छा है. बुरे विचार वाले के लिये संसार बुरा है.

होय फिर झूठा जगत आसार। गहो फिर गुरु के चरन सँभार।।

वाणी में आता है कि गुरु चरणों को संभाल कर पकड़ो. सोचता हूँ क्या बाहरी गुरु के चरण पकड़ने से सारा संसार असार हो सकता है अर्थात् ओझल हो सकता है? नहीं. गुरु के बाहरी चरणों को ही यदि पकड़ोगे तो 'मानवता मन्दिर' सामने आता रहेगा. ब्यास का डेरा सामने आता रहेगा. आगरा सामने आता रहेगा, या जो कुछ सत्संग में खेल होते रहते हैं वे सामने आते रहेंगे. फिर बाह्य गुरु के चरण पकड़ने से संसार असार नहीं होगा. इसलिये मैं कहता हूं कि वाणी द्विअर्थी है. रोचक और भयानक है. यथार्थ नहीं. गुरु के चरण प्रकाश स्वरूप हैं जिसका दूसरा नाम पारब्रह्म है. जब तक हमारी सुरत अन्तर में गुरु के चरण या पारब्रह्म में जाकर प्रकाशमय नहीं होती या ब्रह्ममय नहीं होती, इस संसार का अभाव हमारी दृष्टि में नहीं हो सकता है. लाखों आदमी गुरु मत में शामिल है, मत्थे टेकते हैं, सेवायें करते हैं, सत्संगों में जाते हैं परन्तु किसी को विशेष लाभ नहीं होता. आयु बीत चली. मेरी आयु भी बीत चली. मैंने बाह्य गुरु के चरण बहुत पूजे हैं. उनकी अनुपस्थिति में उनके खड़ाऊ पूजे हैं. अतः जो लोग यह चाहते हैं कि इस बाहरी जगत से तथा मन के विचारों से जगत से छुटकारा हो जाय तो पारब्रह्म में पहुंचना आवश्यक है जो गुरु चरण हैं. यही बात हुजूर महाराज ने 'प्रेमबाणी' में लिखी है. सत्गुरु कौन? सत्गुरु शब्द है. और प्रकाश उसके चरण हैं. इसका संकेत प्राणायाम या गायत्री मन्त्र में हैं. वहां पहुंचे बिना संसार तुम्हारे लिये असार नहीं होगा. हां, बाह्य गुरु के प्रेम, भक्ति और सेवा से यह बाह्य जगत और अन्तर का सूक्ष्म जगत आनन्ददायक हो जायगा. जीवन में यह अवस्था भी बड़ी उत्तम है. वह जो बाहर की सेवा, बाहर के दर्शन तथा बाहर की पूजा करते हैं वे धन्य हैं मगर असली प्रयोजन या उद्देश्य अन्तरीय प्रकाश, सावित्री, पारब्रह्म या गुरु के चरणों के बिना पूरा नहीं होगा. यह मैं इसलिये कहता हूँ कि बड़े-बड़े अच्छी पोज़ीशन वाले जिज्ञासु लोग गुरु की सेवा करते हैं. अतः मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मुझ पर कोई दोष सेवा लेने का न रहे.

मिले तब इनसे नाम अपार, देख फिर घट में मोक्ष दुआर।।

बाह्य गुरु की सेवा से संस्कार व युक्ति उस असली पारब्रह्म गुरु के चरण या सावित्री के दर्शनों

का मिलेगा. जब तक तुम्हारी सुरत प्रकाश मय, ब्रह्म या गुरु चरणों में अन्तर में न जायगी तब तक मोक्ष नहीं मिल सकता. मोक्ष क्या है? छुटकारा. छुटकारा किससे? उस वस्तु से जो संसार को देखती है. संसार देखने वाला, समझने वाला कौन है? तुम्हारा मन, तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा चित, तुम्हारा अहंकार. इसीलिये शास्त्रों में और सन्तों के मार्ग में दसवें द्वार से आगे सत्गुरु की प्राप्ति होती है. वह सत्गुरु क्या है? केवल प्रकाश. वह सत्गुरु के चरण हैं. जब तक सुरत वहां नहीं जाती जीव के लिये संसार असार होना असम्भव है. हां, जब कुछ साधन के बाद मनुष्य को प्रकाश और अन्तरीय शब्द के दर्शन हो जाते हैं और ज्ञान हो जाता है कि मेरा रूप प्रकाशमय और शब्दमय है तब वह नीचे आकर संसार को देखता है तो संसार के देखने से जो पहले उसको अज्ञान और भ्रम के कारण घबराहट, चिन्ता होती थी उसमें कमी आ जाती है. जब तक गुरु के चरणों से, प्रकाश से, सावित्री से, या पारब्रह्म से मिलाप नहीं होता, दूसरे शब्दों में ज्ञान नहीं होता कि मेरा असल घर प्रकाश और शब्द है तब तक इस परिवर्तन शील जगत में रहते हुये जो अशान्ति आती है वह दूर नहीं हो सकती.

चलो फिर शब्द विचार विचार। पाओ एक शब्द सार का सार।।

जब मनुष्य के अन्तर प्रकाश और शब्द खुल जाता है तो उसमें उसी प्रकार के शब्द और प्रकाश की विभिन्न अवस्थायें होती हैं जिस तरह हम इस संसार में बाहर में भिन्न-भिन्न अवस्थायें जाग्रत में रहते हुये देखते हैं. इसी प्रकार ब्रह्म देश अर्थात शब्द और प्रकाश के मंडल में जो मेरी समझ में आत्मिक देश है वहां भी वैसे ही रचना है और वहां प्रकाश और शब्द के देश में, मंडल में या रचना में सैर करते रहो. यदि अपने घर जाना है तो केवल एक सार शब्द और एक ही प्रकाश केवल श्वेत रंग का प्रकाश जिसे सेत सिंहासन बोलते हैं और एक ही शब्द जो टूटता नहीं, जिसमें लय नहीं होती, उसको पकड़ो. जब तक शब्द में लय है वह शब्द के मंडल की रचना है और जब तक प्रकाश या नूर में श्वेत रंग नहीं और दूसरे रंग के प्रकाश आते रहते हैं वह प्रकाश की रचना है. वर्तमान साइंस भी तो सिद्ध करती है कि एक सफेद रंग से सात रंग निकलते हैं. सात रंगों को मिला दो तो सफेद रंग हो जायगा. इस सार शब्द और श्वेत प्रकाश में मेरा हमेशा ठहराव नहीं होता, क्योंकि अभी रचना का आनन्द लेने की इच्छा शेष है.

पड़े क्यों भटको नैनन वार। झांक तिल खिड़की उतरो पार।।

यह मार्ग सबके लिये नहीं. केवल उनके लिये है जो इस संसार के खेल को दुखदायी समझते हैं. यह मार्ग उनको है जो किसी वस्तु के खेल को दुखदायी समझते हैं. यह मार्ग उनको है जो किसी वस्तु की खोज करते हैं. अर्थात् परमसुख परम शान्ति परमानन्द की.

गुरु से लेना जुक्ती यार। गुरु बिन नहीं खुले यह द्वार।।

गुरु से युक्ति और रेडियेशन-- बाहय गुरु वह होता है जो उस अवस्था में रहने वाला है तब ही उसकी रेडियेशन जाएगी. इसलिये गुरु मत में पूर्ण और आमिल (साधन करने वाले) गुरु की

आवश्यकता है. पूर्ण और आमिल (साधन करने वाला) है मगर पूर्ण नहीं है. आमिल जब तक न होगा पूर्ण नहीं होगा. पूर्ण वह है कि जो साधन उसने किया है उसके वर्णन करने की योग्यता रखता है. पूर्ण गुरु वह है जो आमिल है (साधन करने वाला) और अमल (साधन) को दूसरे को समझा सकता है. कितने ही साधन सम्पन्न होते हैं मगर वे दूसरों को समझा नहीं सकते. वे पूर्ण नहीं हैं. साधन करने वाले की संगत से तुम्हारी हालत बदल जायगी, मगर दशा बदलने पर भी शंकायें और प्रश्न उठते रहेंगे क्योंकि दूसरों की बातें जब वह सुनेगा तो भ्रम आते रहेंगे और यदि गुरु आमिल और पूर्ण है तो वह अवस्था भी उसकी आ जायेगी और प्रश्नोत्तर भी न उठेंगे.

लोग समझते हैं गुरु ने फूंक मार देनी है. नहीं. आमिल (साधन सम्पन्न) की संगत तथा उसकी रेडीयेशन स्वयं जिज्ञासु पर प्रभाव करती है. इसका प्रमाण कल जनरल साहब (मिलिटरी वालों) ने दिया था. उन्होंने कहा था कि आपने मुझे छाती से लगाया था तो चार-पांच दिन मुझ पर मस्ती छाई रही. यह क्या है? वह रेडियेशन का नियम है. यह नहीं कि मैंने कुछ उनके अन्तर प्रवेश कर दिया. वह बड़ा आदमी था और इस खोज में था. उसमें जिज्ञासा थी. मेरी रेडियेशन ने उस पर प्रभाव कर दिया. यह ऐसे ही है. जैसे कोई स्त्री किसी युवक को यदि मिले या हाथ लगाये, चाहे उसकी नीयत उस समय काम भोग की हो या न हो, फिर भी युवक में काम का अंग जाग उठता है. यही नियम यहां काम करता है.

कमाना जुक्ती तुम कर प्यार। लगाना सुरत सहज मन मार।।

जिस तरह से प्रेम और आशा ले कर जनरल साहब मेरे पास आये इसी तरह मनुष्य जब साधन करता है, अपने अन्तर गुरु स्वरूप को सत् मान कर कि वह मौजूद है अपने अन्तर चलता है उसको यह वस्तु मिलती है. अपने अन्तर में मालिक और गुरु की मौजूदगी का विश्वास होना चाहिये. यदि वह बात नहीं है तो अन्तर के साधन में रस न आयेगा. इस बात का हर समय विश्वास रखना चाहिये कि वह मालिक हर समय तुम्हारे पास है. अन्तर में उसी श्रद्धा से जाओ जिस श्रद्धा से जनरल साहब मेरे पास आये थे. मैंने गलती खाई या ठीक किया कि मैंने अपने आपको संत सत्गुरु वक्त कहा है. गुरु नाम है सच्चे ज्ञान, सच्ची भक्ति तथा सच्चा मार्ग दिखलाने वाले का और मैं सच्चा रास्ता, सच्ची युक्ति बताता हूँ.

चले फिर सुरत धुन की लार। चुये जहां पल पल अमृत धार।।

जो आदमी उस मालिक को या सत्गुरु को अपने अन्तर विश्वास रखते हुये कि वह अन्तर में अभ्यास करेगा, उसको अमृतधार, आनन्द तथा परमानन्द अवश्य मिलेगा. बाहर में भी तुम अपने गुरु से प्रेम करते हो तो उसके पास जाने से खुशी मिलती है क्योंकि तुमको विश्वास है कि वह मौजूद है. तो अन्तर में भी इस बात का विश्वास होना अनिवार्य है कि वह मालिक सत्गुरु तुम्हारे अन्तर है. बाहरी गुरु की यह ड्यूटी है कि वह किसी ढंग से मनुष्य को विश्वास करा दे कि वह मालिक तुम्हारे अन्तर है. जब तक यह विश्वास नहीं बैठता. सिर पटक कर मर जाओ यह

अमृतधार अन्तर में न आयेगी.

नाम रस पीओ रहो हुशियार। ऋद्धि और सिद्धि रहें तेरे द्वार।।

नाम रस लेते हुये सावधान रहो. अन्तर के आनन्द को लेकर दीवाने न होना. संयम में रहना सिर मारने की आवश्यकता नहीं.

जो आदमी इस रास्ते पर चलता है उसकी इच्छा या संकल्प शक्ति बढ़ जाने से उसकी रेडियेशन के कारण ऋद्धि-सिद्धि स्वयं उत्पन्न होती हैं. मेरे अन्तर इतनी हुई कि जिसका हिसाब नहीं मगर मैं इसमें फंसा नहीं. जो मुझसे हुआ स्वाभाविक हुआ. एक-दो बार अवश्य ध्यान दिया. एक बार पं. पुरुषोत्तम दास की पुत्री का पति पांच वर्ष से लापता था. मैं उनके घर गया. उस समय इच्छा हुई कि इनके जमाता को देखूं कि कहां है. वह परिस्थिति ही ऐसी थी. कितने ही लोग मेरे पास फोटो लेकर आते हैं, आदमी लापता है, मैं ध्यान नहीं देता. इसलिये ऋद्धि-सिद्धि में ध्यान न देना चाहिये.

करो मत उनको अंगीकार। वहां से आगे धरो पियार।।

ध्येय तो अपने घर जाना है.

चलो और देखो घट का सार. पहुंचना राधास्वामी के दरबार।।

अभी मेरा मिलाप राधास्वामी के दरबार में स्थायी नहीं हुआ. चाहता हूँ कि शरीर छूटे और झगड़ा समाप्त हो.

तृतीय भाग

गुरुर्ब्रह्म गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।गुरुसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।

चेतावनी

हंसा सुधि कर अपनो देसा ।टेक।

इहां आई तोरी सुधि बुधि बिसरी, आनि फंसे परदेसा।।

जौन देश से आये हंसा, कबहुं न कीन्ह अंदेसा।

आइ परयो तुम मोह फंद में, काल गहे तेरो केसा।।

लाओ सुख अस्थान अलख पर, जा को रटत महेसा।

जुगन जुगन की संसय छूटै, छूटै काल कलेसा।।

का कहि आयौ काह करतु हौ, कहँ भूले परदेसा।

कहें कबीर वहां चल हंसा, जनम न होय हमेसा।।

कबीर शब्द व्याख्या

कर नैनों दीदार पिंड से न्यारा है.

तू हिरदे सोच विचार यह अंड मंझारा है (टेक)

चोरी जारी निन्दा चारों, मिथ्या तज सतगुरु सिर धारो।

सतसंग कर सत नाम उचारो,

तब सनमुख लहो दीदारा है।।

जे जन ऐसी करी कमाई, तिनकी फैली जग रोसनाई.

अष्ट प्रमान जगह सुख पाई,

तिन देखा अंड मंझारा है।।

सोई अंड को अवगत राई, अमर कोट अकह नकल बनाई।

सुद्ध ब्रह्म पर तहं ठहराई।

सो नाम अनामी धारा है।।

सतवीं सुन्न अंड के माहीं, झिलमिलहट की नकल बनाई।

महाकाल तहं आन रहाई,

सो अगम पुरुष उच्चारा है।।

छठवीं सुन्न जो अंड मंझारा, अगम महल की नकल सुधारा।

निरगुन काल तहां पग धारा,

सो अलख पुरुष कहु न्यारा है।।

पंचम सुन्न जो अंड के माहीं, सत्तलोक की नकल बनाई।
माया सहित निरंजन राई,
सो सत्त पुरुष दीदारा है।।
चौथी सुन्न अंड के माहीं, पद निर्बान की नकल बनाई।
अविगत कला ह्वै सतगुरु आई।
सो सोहं पद सारा है।।
तीजी सुन्न की सुनो बड़ाई, एक सुन्न के दोय बनाई।
ऊपर महासुन्न अधिकाई,
नीचे सुन्न पसारा है।।
सतवीं सुन्न महाकाल रहाई, तासु कला महासुन्न समाई।
पारब्रह्म कर थाप्यो ताही,
सो निःअच्छर सारा है।।
छठवीं सुन्न जो निरगुन राई, तासु कला आ सुन्न समाई।
अच्छर ब्रह्म कहैं पुनि ताही,
सोई सब्द ररंकारा है।।
पंचम सुन्न निरंजन आई, तासु कला दूजी सुन छाई।
पुरुष प्रकिरती पदवी पाई,
सुद्ध सरगुन रचन पसारा है।।
पुरुष प्रकति दूजी सुन माहीं, तासु कला पिरथम सुन आई।
जोत निरंजन नाम धराई,
सरगुन स्थूल पसारा है।।
पिरथम सुन्न जो जोत रहाई, ताकी कला अबिद्या बाई।
पुत्रन संग पुत्री उपजाई,
यह सिंध बैराट पसारा है।।
सतवें अकास उतर पुनि आई, ब्रह्मा बिस्नु समाध जगाई।
पुत्रन संग पुत्री परनाई,
यहं स्रिंग नाम उचारा है।।
छठे अकास सिव अवगति भौंरा, जंग गौर रिधि करती चौरा।
गिरि कैलाश गन करते सोरा।
तहं सोहं सिर मौरा है।।
पंचम अकास में बिस्नु बिराजे लछमी सहित सिंघासन गाजे।

हिरिंग बैकुंठ भक्त समाजे,
जिन भक्तन कारज सारा है ।।
चौथे अकास ब्रह्म बिस्तारा, सावित्री संग करत बिहारा।
ब्रह्म ऋद्धि ओंग पद सारा,
यह जग सिरजनहारा है।।
तीजे अकास रहे धर्म राई, नर्क सुर्ग जिन लीन्ह बनाई।
करमन फल जीवन भुगताई,
ऐसा अदल पसारा है।।
दूजे अकास में इन्द्र रहाई, देव मुनी बासा तहं पाइ।
रंभा करती निरत सदाई,
कलिंग सब्द उच्चारा है।।
प्रथम अकास मृत्तु है लोका, मरन जनम का नित जहं धोखा।
सो हंसा पहुंचे सत लोका,
जिन सत्तगुरु नाम उचारा है।।
चौदह तबक किया निरवारा, अब नीचे का सुनो बिचारा।
सात तबक में छः रखबारा।
भिन भिन सुनो पसारा है।।
सेस धौल बाराह कहाई मीन कच्छ और कुरम रहाई।
सो छः रहे सात के माहीं,
यह पाताल पसारा है।।
कबीर साहब इस शब्द ---'कर नैनों दीदार...' में कहते हैं वह देह में नहीं है, मन में नहीं है अर्थात वह अनामी पुरुष इनसे अलग है. अब मन क्या वस्तु है? यह मन उसकी नकल है.
सोई अंड को अबगत राइ। अमर कोट अकह नकल बनाई।।
सुद्ध ब्रह्म पर तहं ठहराई। सो नाम अनामी धारा है।।
कहां? अंड में. एक पिंड है, एक अंड है. अंड हमारा मन है. यह नकल है उसकी. वह नकल यहां आके शुद्ध ब्रह्म हो गई. तो मेरा अनुभव यह था कि एक सबलब्रह्म, शुद्ध-ब्रह्म, पारब्रह्म और शब्दब्रह्म है. ये शब्द मैंने अपने जीवन के साधन और अनुभव के बाद अपने गढ़ लिये हैं. इसका प्रमाण मुझको इस वाणी से मिल गया कि मन की अवस्था वास्तव में नकल है या अक्स है. किसका? पारब्रह्म या उससे पूरे मालिक का. जब वह मन में आता है और मन की जो एकाग्र अवस्था होती है उसका नाम शुद्धब्रह्म रखा. मैं कई बार सोचता था कि मैंने शिक्षा में परिवर्तन किया है तो यह पंथाई, राधास्वामी या कबीर पंथी मेरे इन शब्दों पर नुक्ताचीनी करेंगे क्योंकि

दुनिया वाणी के जाल में फंसी है किन्तु मेरा अनुभव गलत नहीं निकला. वही सनातन धर्म है. वही कबीर मत है. हां अमल (साधन) के बिना और गुरु के बिना मानव जाति मज़हबी ख्यालों को गलत रूप में लेकर बंट गई है.

चोरी जारी निन्दा चारों
मिथ्या तज सतगुरु सिर धारो
सतसंग कर सतनाम उचारो।
तब सनमुख लहो दीदारा है।।

अब तुम चाहे राधास्वामी हो, कबीर पंथी या सनातनी हो, कोई भी हो, जब तक ये चार बातें-- चोरी, यारी, निन्दा और मिथ्या कोई नहीं छोड़ता, वह कैसे इस अवस्था या मंजिल पर जा सकता है. चोरी वह है कि जो वस्तु अपनी न हो और जो उसका मालिक हो, उसके अनजानपने में उस वस्तु पर अधिकार करना, या अपना बना लेना चोरी है. तुम चोरी का अर्थ लेते हो किसी वस्तु के चुरा लेने के. तुम जानते हो कि यह शरीर तुम्हारा है. वास्तव में यह तुम्हारा नहीं है. यह तो सबलब्रह्म का बनाया हुआ है. मैं इसे चोरी समझता हूँ. इसलिये जब तक वैराग नहीं होता लाख प्रयत्न करो, मनुष्य इस अवस्था या मंजिल में अमली (क्रियात्मक) रूप से नहीं जा सकता. यारी से कबीर का क्या भाव है मुझे नहीं मालूम. साधारण रूप में यारी कहते हैं अपनी स्त्री को छोड़ कर किसी अन्य स्त्री से अनुचित सम्बन्ध जोड़ना. मैं इसका अर्थ यह नहीं लेता. मैं यारी का अर्थ लेता हूं किसी से सम्बन्ध जोड़ना. हम किसी को मित्र, किसी को भाई, किसी को बेटा समझते हैं. यह यारी या सम्बन्ध है. तो जब तक हमारे दिल से यह सम्बन्ध है, जिन-जिन आदमियों या वस्तुओं से याराना लगाया हुआ है वही वस्तुयें तुम्हारे सामने आयेंगी. फिर उस मालिक के दीदार को कैसे प्राप्त कर सकते हो.

अब तीसरी बात है-- निन्दा. किसी वस्तु को अच्छा न समझना निन्दा है. यह निन्दा की सूक्ष्म हालत है. तो हम धार्मिक लोग एक दूसरे मज़हब वाले को अच्छा नहीं समझते. फिर वहां कैसे पहुंचोगे.

मिथ्या कहते हैं जो वस्तु वास्तव में नहीं है मगर भासती है. मेरी समझ में जो कुछ हम अपने अन्तर आंख बन्द करके देखते हैं वह सब मिथ्या है. इसकी पूर्ण व्याख्या आगे आयेगी. चोरी, यारी, निन्दा और मिथ्या जब कोई त्यागता है तब यह वस्तु मिलती है.

उस शुद्ध ब्रह्म या मालिक के दर्शन करने के लिये जब तक पूर्ण वैराग नहीं होगा, बौद्धिक (अक्ली) रूप से बात समझ में नहीं आयेगी. फिर उस अवस्था की प्राप्ति का इलाज क्या है. कबीर कहते हैं :-

चोरी जारी निन्दा चारों। मिथ्या तज सतगुरु सिर धारो।
सतसंग कर सतनाम उचारो। तब सनमुख लहो दीदारा है।।

कहते हैं सत्संग करो, सत्गुरु सिर पर धारण करो. वह सत्गुरु कौन है -- वह है ज्ञान, समझ, विवेक. जब तक सत्संग में रहस्य या भेद को समझ कर कारण वैराग अर्थात समझ-बूझ के साथ वैराग नहीं आता, अन्तर के दर्शन हो नहीं सकते. जब भजन में बैठोगे, तरह-तरह के विचार या प्रश्नोत्तर उठते रहेंगे. यह अमल (साधन) का तरीका है या विधि है कि मनुष्य कैसे उस अवस्था को प्राप्त कर सकता है.

जो मन ऐसी करे कमाई। तिनकी फैली जग रोसनाई।

अष्ट प्रमान जगह सुख पाइ। तिन देखा अंड मंझारा है।।

जो व्यक्ति ऊपर कही हुई बातों पर अर्थात अष्टदल कंवल या मन में चला जाता है वहां असली स्वरूप में स्थिरताई हो जाती है. अब तक जितने महापुरुष हुये हैं, जिन्होंने त्याग आदि के कार्य अथवा बलिदान किये हैं या जो जहां पहुंचे हैं उनके नाम दुनिया लेती है जैसे मीराबाई, सूरदास तथा दूसरे भक्तजन हुए हैं. यह है अमली पहलू. इसका अनुभव मेरे अपने जीवन से हुआ. मैंने भी बहुत टक्करें मारी हैं. जब से मन शुद्ध हुआ, लाग लगाव या सम्बन्ध टूटे, बात समझ में आ गई. अब साधन में आनन्द मिलता है. जिस दिन साधन या अभ्यास न करूं, तो नशा टूटता है. नशा की आदत आ गई है.

सोई अंड को अवगत राई। अमरकोट अकह नकल बनाई।

शुद्ध ब्रह्म पद तहां ठहराई। सो नाम अनामी धारा है।।

जब मनुष्य यह अवस्था पैदा करके अपने अकारण वैराग से अन्तर चला जाता है या स्थित हो जाता है वह शुद्धब्रह्म (की अवस्था) है और वह अनामी अर्थात् परमतत्त्व (ज़ात) का अक्स है, नकल है और उसी की धार है अर्थात् शुद्धब्रह्म की. इसको संतमार्ग में सुन्न और महासुन्न कहते हैं. यह धार है उस मालिक की.

सतवीं सुन्न अंड के माहीं। झिलमिलहट की नकल बनाई।

महाकाल तहां आन रहाई। सो अगम पुरुष उच्चारा है।।

(इसे सुन कर महाराज जी ने कहा कि इसकी व्याख्या दूसरे दिन इस अवस्था के साधन से उठकर करूंगा कि सातवीं सुन्न की अवस्था कैसी है और वहां क्या दशा है.)

(29-11-1967 प्रातः समाधि से उठकर सतसंग आरम्भ हुआ)

सोई अंड को अवगत राई। अमरकोट अकह नकल बनाई।।

शुद्ध ब्रह्म पद तहां ठहराई। सो नाम अनामी धारा है।।

'अवगत' उसे कहते हैं जिसमें गति नहीं होती. वह आधार है. यह जो सूक्ष्म माया या मन का मंडल

है यह उसकी नकल है, जिसे मैं शुद्ध ब्रह्म कहता हूं. इसमें जितने दर्जे हैं इनको कबीर ने सात सुन्न कहा है. जो मैं समझता हूं वह कहता हूँ :-

सुन्न कहते हैं ठहराव की हालत को जब कोई वस्तु सुन्न हो जाती है तो वह ठहर जाती है. तो मन का एकाग्रता या यकसूई की अवस्थाओं या विभिन्न श्रेणियों के नाम मेरे ख्याल में कबीर ने रखकर अपना अनुभव कहा है. उदाहरण का एक अंग लेता हूँ जैसे मन का एक भाग या अंग काम है इस काम की भिन्न-भिन्न हालतें होती हैं. एक हालत में नवयुवकों व नवयुवतियों की सगाई होती है. वह जो ख्याल इनके सगाई होने का उनके अन्तर में उत्पन्न होता है, वह काम की एक हालत है जब विवाह होता है, भांवर फेरे होते हैं, वह काम की एक और हालत है. स्त्री का पुरुष को हाथ से छूना अथवा पुरुष का स्त्री को हाथ से छूना काम की एक और हालत है. इसी प्रकार स्वयं समझ लो कि काम का अंग तो एक है मगर उसकी हालतें या अवस्थायें अलग-अलग हैं. कोई विचारवान हुआ, उसने 8-10 अवस्थाएं वर्णन कर दीं. किसी ने दो, किसी ने चार वर्णन कर दीं. इसी प्रकार जब मनुष्य उस मालिक की खोज में उसका कोई रूप मानकर, कोई इष्ट मान कर-- किसी ने राम माना, किसी ने कृष्ण माना, किसी ने गुरु माना, अपने अन्तर उसके पूर्ण रूप को बनाकर उसमें लय हो जाता है तो प्रेम भाव की आदि से लेकर अन्त तक जो अवस्थायें या हालतें हैं, वे यह सुन्न हैं. काम के अंग में भी यही दशा है. कहां सगाई और कहां स्त्री भोग की अन्तिम अवस्था. अनुमान लगाओ. मेरी समझ में अन्तरीय प्रेम की यही हालतें है. अब सुन्नों का हाल सुनो :-

झिलमिलहट की नकल बनाई। महाकाल तहां आन समाई।

सो अगम पुरुष उच्चारा है। यह अंड मंझारा है।

जब आरम्भ से मनुष्य चलता है तो प्रीतम को अन्तर में झिलमिल प्रकाश में देखता है अर्थात् कभी रूप बनता है कभी टूटता है. कभी प्रीतम का रूप प्रगट तो फिर विलय होने की अवस्था में एक ज्ञान रहता है. प्रगट हुआ और गया. यह जो ज्ञान होता है यह मनके अन्तर में है. इसी प्रकार यह मन चूंकि नकल है असल की, वह जो जिसका यह अक्स है उसको अगम की नकल कहते हैं. अगम लोक में क्या है? ज्ञान साधन के बिना इसका समझना कठिन है. जो अगम देश के वासी हैं वे समझ सकते हैं. उदाहरण देता हूँ. वहां रूप बनता है, फिर टूटता है. वह जो अगम है उस अवस्था में अपने होने का अहसास होता है और फिर बन्द हो जाता है यदि बिल्कुल बन्द हो जाय, अपने आपका भान न रहे तो अनामी धाम आ गया. अगम के आगे अनामी धाम है. अनामी में कुछ नहीं है. हम ही नहीं रहते. केवल तत्त्व या ज़ात रहती है.

सुरति हुई अतिकर मगनानी। पुरुष अनामी जाय समानी।।

चूंकि उसी हालत या अवस्था का अक्स मन के अन्तर है अतः मैं विवशतः कबीर की वाणी को सत् मानता हूँ.

छटवीं सुन्न जो अंड मंझारा। अगम महल की नकल सुधारा।
निरगुन काल तहां पग धारा। सो अलख पुरुष सों न्यारा है।
इसी तरह से इन्होंने ऊपर से शुरू किया है जिस तरह नीचे की ओर जाते हुये ऊपर की तरफ जाते हैं. कबीर का इसमें क्या भाव है मैं जानता नहीं मगर इतना मुझे याद आता है कि मैं एक बार इन्दौर गया. वहां राधास्वामी की वाणी की बाबत मैंने कुछ कहा और नीचे से लेकर ऊपर के शब्द की व्याख्या की. ऐसा क्यों? केवल दूसरे लोगों के समझाने के लिये. इसलिये इसको इतना ही समझो कि ये सब तुम्हारे जितने सुन्न कबीर ने इसमें वर्णन किये हैं यदि ध्यान से शब्द पढ़ो तो मालूम हो जाएगा कि ये सब मन की अवस्थायें हैं. अब यदि किसी ने अपने असली मालिक को देखना हो या उससे मिलना हो तो क्या उसके लिये यह आवश्यक है कि वह इन दर्जों या अवस्थाओं को अवश्य देखे. अवश्य देखने वाले विषयी वृत्ति के होते हैं अर्थात् आत्म आसक्त होते हैं. ये आत्म प्रेम में आनंद लेते हैं. जिस तरह कामी मनुष्य अपने मन्तव्य की प्राप्ति के लिये (उदाहरण भद्दा है) अनेक प्रकार के आसन और सामान पैदा करता है, इसी प्रकार ये मानसिक आनन्द की अवस्थायें हैं. जो आदमी इस आत्मिक आसक्ति में ही पड़े रहते हैं वे इष्ट पद को नहीं पहुंच सकते. इष्ट पद तो परम शान्ति है. जिस तरह कामी पुरुष के अन्दर काम का वेग उत्पन्न होता है जिसका होना स्वाभाविक है तो काम के भोगने के बाद वह शान्ति प्राप्त कर पाता है और काम का वेग समाप्त हो जाता है. इसी प्रकार यह आत्मिक भाव (जज़्बा) होता है. मालिक के साक्षात्कार की लालसा का भाव होता है. जब तक यह भाव समाप्त नहीं होता, इन आत्मिक भाव वालों को भी शान्ति नहीं मिल सकती. यह मेरे जीवन का 80 वर्षीय अनुभव है. यही अनुभव हुज़ूर महाराज का है. वे लिखते हैं गुरु की महिमा पर 'घात माया ने किये बहु भांति, मुरशिद ने बख्शी मोहि शान्ति', यदि मनुष्य जीवन भर आत्मिक आसक्ति में ही व्यतीत कर दे और वह इष्ट पद पर न पहुंचे तो उसका दिमाग़ ख़राब हो जाता है. जिस प्रकार विषय भोग का परिणाम खराब निकलता है, इसी प्रकार आत्मिक प्रेम का परिणाम भी खराब निकलता है. (कह रहा हूँ जिन्दगी की खोज का अंजाम) क्यों? क्योंकि मैंने योग की आसक्ति में हद की हुई है. अब उसका प्रभाव दिमाग़ महसूस करता है. कल सारे दिन जो मौन रखा, इन श्रेणियों से ऊपर ठहरने की कोशिश करता रहा. शाम को दिमागी हालत घबराहट में थी. सिर पर तेल मलवाया. यह जीवन के अनुभव वर्णन कर रहा हूँ. यहां पर करतार सिंह की मां बैठी है जो मानसिक योग में जीवन भर रही और अन्तर में अधिक सुमिरन-ध्यान की ओर बचपन से जाती रही. दिमाग़ ख़राब हो गया था. मैं कोई बात ऐसी नहीं कहता जो परीक्षा की हुई न हो. यह मन स्वादी है. आत्मा स्वादी है. स्वादों की चाह में आदमी फंस जाता है. असली वस्तु शान्ति है. यही इष्ट पद है. इसके लिए किसी पूर्ण पुरुष की, किसी पूर्ण गुरु की आवश्यकता है जो मार्ग प्रदर्शन कर सके. पंथों के गुरु और पंथाई सम्भव है कि मेरे इन प्रयोग किये गये शब्दों 'मानसिक और आत्मिक आसक्ति' से बुरा

मानें. मैं कहता हूं अभ्यास और साधन के बजाय पूर्ण गुरु होना चाहिये जो मनुष्य को शान्ति दिला दे. इसके प्रमाण में कबीर की वाणी कहता हूँ. पूरी तो याद नहीं है-- वे कहते हैं-- जो जीव को अनहद में भी नहीं उरझाता. यों तो स्वामी जी की आरती में भी गुरु की महिमा गाई है. (तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा. सत्तनाम सतगुरु गति चीन्हा) अर्थात गुरु वह है जो मनुष्य को सत्गुरु और सतनाम की असलियत का पता दे देता है. अतः पूर्ण पुरुष के सत्संग की महिमा है. केवल इसकी दया से हम सत-चित-आनन्द से निकल सकते हैं.

(30-11-1967 को प्रातः ऊपर के सिलसिले में सत्संग आरम्भ हुआ.)

कबीर के इस शब्द में सात सुन्नों का वर्णन दो बार किया गया है. इसमें सात सुन्न से फिर नीचे सात सुन्न हैं. फिर छठा फिर पांचवां.
सतवीं सुन्न अंड के माहीं। झिलमिलहट की नकल बनाई।
महा काल तहां आन रहाई, सो अगम पुरुष उच्चारा है।।
सतवीं सुन्न महाकाल रहाई, तासु कला महा सुन्न बनाई।
पारब्रह्म कर थाप्यो ताही, सो निःअक्षर सारा है।।
छटवीं सुन्न जो अंड मंझारा, अगम महल की नकल सुधारा।
निरगुन काल तहां पग धारा, सो अलख पुरुष कहुं न्यारा है।।
छटवीं सुन्न जो निरगुन राई, तासों कला आ सुन्न समाई।
अक्षर ब्रह्म कहें पुनि ताही, सोई शब्द ररंकारा है।।
पंचम सुन्न जो अंड के माहीं, सत्त लोक की नकल बनाई।
माया सहित निरंजन राई, सो सत्त पुरुष दीदारा है।।
पंचम सुन्न निरंजन राई, तासु कला दूजी सुन छाई।
पुरुष प्रकृति पदवी पाई, सुद्ध सरगुन रचन पसारा है।।
चौथी सुन्न अंड के माहीं, पद निर्वाण की नकल बनाई।
अविगत कला यह सतगुरु आई, सो सोहं पद सारा है।।
कबीर के इन शब्दों से यह सिद्ध होता है कि सोहंग पुरुष से लेकर सहस्रदल कमल तक या जब मन बन कर अपने 'मैं पने' को व्यक्त करता है, वहां से लेकर जब वह अनेक प्रकार के विचारों में आ जाता है इसके इस खेल की विभिन्न अवस्थायें मेरी समझ में सुन्न हैं, ठहराव की हालतें हैं. ये जितनी हालतें पैदा होती हैं ये ऊपर के लोकों से आती हैं, उनकी नकल हैं. विज्ञान तथा मेडीकल साइंस वर्तमान समय की विद्याओं में एक तो मनुष्य शरीर का पूरा विश्लेषण करती है. ये एक यह सिद्ध करती है कि मनुष्य के दिमाग के अन्दर दो प्रकार के भाग हैं-- एक भूरे रंग का और एक

सफेद रंग का. भूरे रंग के भाग में भिन्न-भिन्न प्रकार के केन्द्र होते हैं जो भूरे भाग में हैं उसी के अनुसार शारीरिक अहसासात (भान) होते रहते हैं. यह डाक्टरों का कथन है. मेरे और कबीर के अनुभव में यह आया है कि जो सफेद रंग के दिमाग का भाग है उसमें भी केन्द्र हैं जिनके नाम, अगम, अलख, सत आदि संतों ने रखे हैं.

इससे यह सिद्ध हुआ कि शरीर और मन के अन्दर जो कुछ भी होता है वह नकल है छाया है उन केन्द्रों की जो सफेद रंग के दिमाग में हैं. तो जब यह खयाल करता हूँ तो यह सोचता हूं कि देह और मन के अख्तियार या वश में कुछ नहीं है. यह तो उस शक्ति के अधिकार में है जो सफेद रंग के दिमाग में काम करती है. वही शक्ति जब शरीर में आती है तो रक्त में रहकर शरीर का काम करती है. वही शक्ति जब सूक्ष्म प्रकृति अर्थात भूरे रंग के दिमाग में काम करती है वह संकल्प है ख्याल है, वासना है. इससे सिद्ध होता है और मुझको इस बात से सन्तुष्टि है कि जो कुछ हो रहा है वह उस शक्ति से है जो सफेद रंग के दिमागी भाग में मौजूद है. यह हमारी रचना है. इसी प्रकार ये कुल केन्द्र इस ब्रह्मांडी लोक-लोकान्तर में मौजूद हैं. सत्पुरुष एक महापुरुष है जिसका दिमाग़ अगम, अलख और सत् (लोक या अवस्था) है. इसका मन सोहंग पुरुष, महासुन्न, सुन्न, त्रिकुटी और सहस्रदल कंवल है और इसका शरीर हिरण्यगर्भ, अव्याकृत और विराट है. 'जो पिंडे सो ब्रह्मंडे.'

इस शब्द में चौथे सुन्न में यह वर्णन किया गया है-

चौथे सुन्न अंड के माहीं. पद निर्वान की नकल बनाई।

अवगति कला यह सतगुरु आई. सो सोहं पद सारा है।।

इस स्थान पर सत्गुरु प्रगट होता है! गुरु नाम है ज्ञान का, समझ का, विवेक का. वह इस दुनिया में जीवन व्यतीत करने और उससे पार जाने का ज्ञान देता है. उसका असली रूप ऊपर से आता है और 'मैं पने' की हालत से वचन कहता है. क्या वचन कहता है? यही कि यदि ऐ मनुष्य. तू शरीर को ठीक रखना चाहता है तो शरीर का चलाने वाला जो रक्त है, इसकी गति को ठीक रख. यदि दिमाग को ठीक रखना चाहता है तो अपने संकल्प को ठीक रख. शरीर में रक्त ही एनर्जी या शक्ति है और भूरे रंग में ख्याल ही सब कुछ है. साथ ही इन दोनों को ठीक रखने के लिए शब्द है जो सफेद रंग के दिमागी भाग में मौजूद है. यदि मनुष्य अपने इस शब्द को सुनता रहे जो सफेद रंग के दिमागी भाग में आता है तो उसका दिमाग और शरीर प्राकृतिक रूप से सम रहेगा. नाम इनको कंट्रोल में रखेगा. मनुष्य दीवाना न होगा. इसलिए नाम की महिमा है क्योंकि जो असली शक्ति है यदि वह स्थित हो जाये अथवा काबू में आ जाये तो शेष जितनी शक्तियां हैं, जिनका आधार वह शब्द रूपी शक्ति है, सम अवस्था में आ सकती है. इसलिए सत्नाम की महिमा शब्द के शुरू में है. यह सत्नाम का सुनना ही शान्ति देना है.

कर नैनों दीदार यह पिंड से न्यारा है। तू हिरदे सोच विचार यह अंड से पारा है।।

चोरी जारी निन्दा चारों, मिथ्या तज सतगुरु सिर धारो।
सतसंग कर सतनाम उचारो, तब सनमुख लहो दीदारा है।।
वे कहते हैं सत्गुरु को धारण करो अर्थात् किसी पूर्ण पुरुष की संगत में जाओ. सत्गुरु धारण करने का यही अभिप्राय है. वह तुमको सत्संग कराके रहस्य (भेद) समझा देगा. जब भेद समझ में आ जाये फिर सत्नाम धारण करो. अन्तर के शब्द सुनो. वह शब्द स्वरूपी नाम दिमाग के श्वेत रंग के भाग में रहता है. जिस समय मनुष्य इसको धारण कर लेता है फिर उसको अपना यह जीवन पूर्ण मालूम होता है. उसका शरीर, उसका दिमाग शान्तमय, सुखमय और आनन्दमय हो जाता है. फिर वह मालिक जिसकी मैं खोज करता था क्या निकला? सम अवस्था और शान्ति अथवा उसको शब्द स्वरूपी कह लो. यदि वह है तो तुम्हारे अन्तर ही है. इस शब्द को सुनने के पश्चात अनुभव आता है और वह शान्ति देता है :-
'सुरत शब्द दोऊ अनुभव रूपा, तू तो पड़ा भरम के कूपा।'
बाहर तो है नहीं. इसलिए मैं विवश शब्दयोग, अनहदयोग, उद्गीत (राग) को ही इस संसार में जीवन को शान्ति, सुख और सन्तुष्टि के लिए श्रेष्ठ समझता हूँ. जो इस अवस्था का वासी होता है उसकी अपनी मनोकामनाएं शारीर सम्बन्धी अथवा आत्मिक शान्ति सम्बन्धी स्वतः पूर्ण होती रहती है. यह मेरा अपने जीवन का अनुभव है. प्रथम तो मैं इच्छा करता नहीं, यदि स्वाभाविक किसी आवश्यकता का देह या मन को अहसास हो जाता है या आत्मा को, तो कुदरत स्वयं कोई न कोई प्रबन्ध करती रहती है वह कुदरत कौन है? वह कुदरत है जिसने इस समस्त रचना को बनाया है अर्थात वह है शब्द, नाम, उद्गीत. वर्तमान विज्ञान भी प्रकाश और शब्द को आदि मानता है.
जब तक जीव को इस नाम से मेल नहीं होता इस नाम की नकल या प्रतिबिम्ब कल्पना या वासना के रूप में मन में रहता है या रक्त के रूप में शरीर में रहता है वह इसमें रहते हुए शारीरिक विषय भोग, मानसिक आसक्ति और आत्मिक प्रेम अर्थात सत्-चित्-आनन्द के प्राप्त करने में परेशान रहता है. जिस समय यह सत्नाम मिल जाता है फिर ये सत्-चित्-आनन्द जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भाव हैं इनमें मनुष्य की सुरत चक्कर नहीं काटती है.
इस शब्द में इस रचना के आगे आकाश का वर्णन कबीर ने किया है. इसका वर्णन आगे करूंगा. यदि सत्संग में बात समझ में आ जाये तो इस शान्ति के प्राप्त करने के लिए अथवा सम अवस्था को प्राप्त करने के लिए जो अनेक प्रकार के जप, तप, तीर्थ अथवा अन्य योग-साधन किये जाते हैं उनकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती. इसलिए सत्संग की महिमा है. सत्संग में केवल सच्चा मार्ग बताया जाता है. स्वामी जी महाराज ने निचले साधन जो पिंड देश में षट् चक्र के कराये जाते थे शायद इसी दृष्टि से वर्जित कर दिये हैं. उन्होंने केवल सहस्रदल कंवल अर्थात मन से ही साधन आरम्भ किया है. मैं कहता हूँ कि यदि जीव अधिकारी है तो उसको साधन ही पारब्रह्म देश से शुरू करा दिया जाये अर्थात सोहंग पुरुष से ही शुरू किया जाये. यह मेरा अनुभव है. काशीनाथ

वकील (गोरखपुर वाले) ने, जो दाता दयाल के प्रेमियों में से हैं, मुझे कहा था कि दाता दयाल महर्षि शिव ने उनको कहा था कि समय आयेगा जब संतमत की शिक्षा सोहंग गति से शुरू की जायेगी. इसके अधिकारी वे नहीं हो सकते जो ज़र (धन), ज़न (स्त्री) और ज़मीन चाहते हैं. तो ऐसे आदमी जिनको साधन यहां से अर्थात् सोहंग पुरुष से शुरू कराया जाये बहुत कम हैं. मेरा ख्याल है कि यदि नाम मिल जाये तो दुनिया के काम जीव के स्वयं होते रहते हैं. दुनिया के क्या काम आवश्यक हैं? पेट भरने को रोटी, रहने को स्थान, पहनने को कपड़ा. इससे अधिक जो कोई हवस रखता है यह दूसरी बात है.

(आज 30-11-1967 सत्संग में पहला शब्द यह पढ़ा गया)

राधास्वामी नाम की बलिहारी। गुरु नाम महा मंगल कारी।।
ख्याल आता है कि क्या यह राधास्वामी नाम तुमको मिल गया? मिलना क्या था! ढूंढते-ढूंढते एक ऐसे बिन्दु की अवस्था जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, जिसमें कुछ नहीं रहता-- न रचना, न गति, न कोई दृश्य,-- आ जाती है. वहां सब कुछ भूल जाता हूँ. कभी अपने होने का भी भान नहीं रहता. मेरी समझ में तो यही राधास्वामी नाम आया. वहां से फिर उत्थान होता है. प्रकाश व शब्द के दृश्य सामने आते हैं. फिर वहां से प्रकाश व शब्द फैलता है. फिर वही प्रकाश व शब्द ज्योति के रूप में होता है. उस ज्योति से नीचे आने से यह स्थूल प्रकृति आभासती है. तो ज्योति से लेकर उस आखिरी अवस्था तक क्या है? वह है अक्षर, निःअक्षर अर्थात ब्रह्म, शुद्धब्रह्म या पारब्रह्म की रचना होती है. इस अनुभव के आधार पर विवश मैं कबीर के इस शब्द से सहमत हूँ. वे कहते हैं कि सब कुछ अंड में हैं अर्थात मन में है. इस मन पर ऊपर के लोकों का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो हमारे भूरे रंग के दिमाग में जो कुछ भी रचना होती है इस रचना का कारण हमारे सफेद रंग का दिमागी भाग है और वह जो वस्तु सफेद रंग में आती है वह उसकी साक्षी है. वह हम हैं. हमारा निज स्वरूप है, हमारी सुरत है. चूंकि कोई वस्तु इस हमारे शरीर में अथवा दिमाग में या दिमाग के किसी भाग में है और वह माद्दा, या पदार्थ जिससे हमारा शरीर व हमारा भूरे और सफेद रंग का दिमाग बनता है, वह बाहर के लोकों और मंडलों से बनता है, इसलिए यह सिद्ध हो गया कि हम और हैं और यह भूरे और सफेद रंग का दिमाग और शरीर और है. यह मेरी समझ में आया. हम ज़ात मुतलक (निज स्वरूप) हैं जो मौज के खेल के कारण इसमें लाये गये हैं. यदि यह ज्ञान हो जाये तो इस शरीर और भूरे तथा सफेद रंग के दिमाग के जितने प्रभाव हम महसूस करते हैं, जिससे सत्-चित्-आनन्द की अवस्थाओं में भ्रमण करते रहते हैं और दुख-सुख, प्रेम, ज्ञान और एक आनन्द की अवस्था का भान करते रहते हैं, इससे बच सकते हैं. यह मेरे जीवन का अनुभव है जो इस अस्सी साल की आयु में प्राप्त हुआ.

जिस ज्योति स्वरूप तक रचना होती है अर्थात भूरे रंग के दिमाग का जो पहला स्थान है जो आंखों के बीच थोड़ा ऊपर को है तो उससे किरणें निकलती हैं प्रकाश निकलता है. उससे फिर शारीरिक इन्द्रियां बनती हैं और शारीरिक खेल आरम्भ होता है. यही कबीर का कथन हैः-

प्रथम सुन्न जो जोत रहाई। ताकी कला अविद्या बाई ।।
पुत्रन संग पुत्री उपजाई। यह सिंध वैराट पसारा है।।
सातवें अकास उतर पुनि आई। ब्रह्म विस्नु समाध लगाई।।
पुत्रन संग पुत्री परनाई। यह स्रिंग नाम उचारा है।।

पुत्रन संग पुत्री पैदा की अर्थात ज्योति से जो धारें निकलती हैं उनमें कोई निर्बल हैं कोई बलवान हैं. जो ज्योति स्वरूप से नीचे आती हैं वह पुत्र और पुत्रियां, गोप और गोपियां हैं. गोप-गोपियों से अभिप्राय है छिपी हुई इन्द्रियों की शक्तियां. यह ज्योति स्वरूप है. इसके अन्तर से जो वृत्तियां निकलती हैं वे पुत्र और पुत्रियां, गोप और गोपियां हैं.

(1-12-1967 कबीर शब्द व्याख्या के क्रम में सत्संग आरम्भ हुआ)

प्रथम सुन्न जो जोत रहाई. ताकी कला अविद्या बाई।।
पुत्रन संग पुत्री उपजाई...
सतवीं अकाश उतर पुनि आई। ब्रह्मा विष्णु समाधि लगाई।।
पुत्रन संग पुत्री परनाई। यह स्रिंग नाम उचारा है।।

वहां से रचना करने की स्वाभाविक इच्छा का नाम अविद्याबाई है. स्वाभाविक गुण है. उस ज्योति स्वरूप में से किरणें या धारें निकलती रहती है. वे धारें किरणों के रूप में रचना के सिलसिले में आपस में मेल खाती हैं या एक दूसरे के साथ जुड़ती हैं. उस जुड़ने का अर्थ है पुत्रन संग पुत्री उपजाई. धनात्मक और ऋणात्मक दो धारें हैं. धनात्मक पुरुष होती है. धनात्मक पुरुष और ऋणात्मक स्त्री का अलंकार है, जो पुरुष की शान्ति को शोषण करती हैं. जब तक धनात्मक और ऋणात्मक मेल नहीं खातीं, तीसरी वस्तु बन नहीं सकती. इसलिये इस स्थान या अवस्था का नाम ब्रह्म है.

छटे अकास शिव अवगति भौरा। जंग गौर रिधि करती चौरा।।
गिरि कैलास गन करते सोरा। तहं सोहंग सिर मौरा है।।

जब सृष्टि बनती है और ज्योति स्वरूप की किरणें धनात्मक और ऋणात्मक - होकर मेल खाती हैं तब यह पृथ्वी तत्त्व बनता है. फिर इस पृथ्वी से वनस्पति की उत्पत्ति होती है. 'शिव पुराण' मैंने पढ़ा है. उस कुल के कुल में वनस्पति विद्या का वर्णन है मैं ऐसा समझता हूँ. ऋषियों ने इस समस्त रचना को पुराणों में वर्णन किया है. यह 'शिव पुराण', 'गरुड़ पुराण', 'विष्णु पुराण' ये सब

हिन्दु जाति के बुद्धिवान महापुरुषों के बनाये हुये हैं और ये सत्य हैं मगर उनकी सत्यता के भाव को उस आदमी के अतिरिक्त जिसने अपने सारे शरीर का मंथन किया है, दूसरा समझ नहीं सकता. मैं पक्षपात की बात नहीं कह रहा. चूंकि 'शिव पुराण' आदि को लोग नहीं समझते हैं अतः वर्तमान समय की बुद्धि का ध्यान रखते हुये जो विचार प्रगट किये हैं उनको भी हर एक आदमी समझ नहीं सकता, जब तक साधन सम्पन्न न हों.

पंचम अकाश में विष्णु विराजे। लक्ष्मी सहित सिंहासन गाजे।।

हिरिंग बैकुंठ भक्त समाजे। जिन भक्तन कारज सारा है।।

जब स्थूल माद्दा (भौतिक पदार्थ) बन जाता है विराट पुरुष में, तो उसमें जो-जो उत्पत्ति होती है, उस उत्पत्ति को कायम रखना जिस शक्ति का काम है उसका नाम है विष्णु. जो वस्तु उत्पन्न होकर कायम हो जाती है उससे शारीरिक भौतिक (स्थूल) पदार्थ का आनन्द मिलता है. इस वास्ते मेरी समझ में जो उसका आनन्द लेते हैं उस आनन्द का नाम है स्वर्ग. वह काम विष्णु का है. विष्णु एक शक्ति है. हर एक शक्ति के साथ धनात्मक व ऋणात्मक होता है. 'शिव' के साथ पर्वती, विष्णु के साथ लक्ष्मी, ब्रह्म के साथ सावित्री. यह जितने आकाश तत्त्वों के साथ आकाशों का वर्णन किया है, वर्णन शैली अलग है मगर भाव सबका इस सृष्टि की रचना के खेल के वर्णन का है. यह 14 लोक कहलाते हैं. मुसलमान भी 14 लोक मानते हैं. इससे आगे पाताल लोक है. कुल रचना के क्रम में सबसे स्थूल दशा हमारे शरीर में गुदा के नीचे टांगे हैं, पाताल हैं मगर उससे लेकर शिवनेत्र तक विराट पुरुष है अर्थात स्थूल माद्दा. सहस्रदल कंवल से सोहंग पुरुष तक सूक्ष्म प्रकृति और सोहंग से अगम लोक तक आत्मिक जगत है. मैं मालिक की खोज को निकला था. फिर मालिक क्या निकला? मेरे शरीर के अन्दर जो वस्तु इस पाताल लोक, पिंड लोक, अंड लोक (या आत्मदेश) में रहती हुई इसकी साक्षी है, वह इस शरीर में रहती हुई मालिक है. चूंकि यह दुनिया है, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण के लोक हैं तो जो वस्तु इन समस्त ब्रह्मांडों में रहती हुई इनका आधार है, इनमें व्यापक है और साक्षी है, वह अकाल पुरुष परम तत्त्व है. हर एक वस्तु का कोई न कोई भंडार है. तो हर वस्तु जो यहां बनती है उसका सामान किसी भंडार से आता है तब वह बनती है. इस ज्ञान के बाद क्या मिला? अपने रूप का ज्ञान हो गया कि मैं कौन हूँ. हर एक मनुष्य कौन है. वह ज़ाते मुतलक (एक मात्र निजस्वरूप) है. सबका आधार है. सब का साक्षी है.

कबीर की वाणी की व्याख्या जो निज अनुभव के आधार पर की है, उसके प्रमाण में कबीर का शब्द है.

सब का साखी मेरा साईं।

ब्रह्मा बिस्नु रुद्र ईसुर लौं, और अब्याकृत नाहीं।।

पांच पचीस से सुमती करि ले, ये सब जग भरमाया।

अकार ओंकार मकार मात्रा, इनके परे बताया।।

जागृत सुपन सुषोपति तुरिया, इन तें न्यारा होई।
राजस तामस सातिक निर्गुन, इनतें आगे सोई।।
स्थूल सूक्ष्म कारन महाकारन, इन मिलि भोग बखाना।
बिस्व तेजस पराग आत्मा, इनमें सार न जाना।।
परा पसंती मधमा बैखरि, चौबानी नहिं मानी।
पांच कोष नीचे करि देखो, इनमें सार न जानी।।
पांच ज्ञान और पांच कर्म हैं ये दस इन्द्री जानो।
चित सोइ अंतःकरन बखानी, इनमें सार न मानो।।
कुरम सेस किरकिला धनंजय, देवदत्त कंह देखो।
चौदह इन्द्री चौदह इन्द्रा, इनमें अलख न पेखो।।
तत पद त्वं पद और असी पद. बाच लच्छ पहिचाने।
जहद लच्छना अजहद कहते, अजहद जहद बखाने।।
सतगुरु मिलै सत सबद लखावै, सार सबद बिलगावै।
कहै कबीर सोई जन पूरा, जो न्यारा करि गावै।।

यदि कोई व्यक्ति अपने सच्चे मालिक से मिलना चाहता है अथवा अपने घर जाना चाहता है तो किसी सत्गुरु से संगत में बैठ कर भेद या रहस्य को समझे. फिर अपने अन्तर में जो वह सच्चा नाम है, सत्नाम है, शब्द है, निज नाम है उसमें लगे. इस निज नाम का नाम राधास्वामी मत में 'राधास्वामी' है. 'सकल उपाय छोड़ कर नाम भक्ति को ले'. मगर मैंने पहले भी कहा है कि जब तक चोरी, यारी, निन्दा और मिथ्या का त्याग नहीं होता, यह नाम भी नहीं मिलता. मुझे खोज थी. मौज दाता के चरणों में ले आई. उन्होंने यह गुरु पदवी देकर, मुझको सारा भेद ज्ञान करा दिया. केवल इस एक ख्याल ने कि मैं किसी के अन्दर नहीं जाता, और मेरा रूप अभ्यासियों के अन्तर में प्रकट होता है, मुझे विश्वास हो गया कि जो कुछ मैं अपने अन्तर देखता था --रूप, रंग या खेल, वे मिथ्या थे, इसलिये मैंने अधिकारियों के लिए, जो सचमुच अपने घर जाना चाहते हैं, भेद या रहस्य को प्रकट कर दिया है. अमल करना, नाम जपना यह जीवों का अपना काम है मेरा नहीं. हाँ, रोज़-रोज़ के संस्कार मिलने से, सत्संग से, श्रवण, मनन और निदिध्यासन से मनुष्य को अपने घर का ख्याल मिलता रहता है. इसलिए सत्संग की महिमा है.

(2-12-1967 उसी क्रम में सत्संग आरम्भ हुआ)

हर एक महापुरुष ने अपने-अपने अनुभव के आधार पर अपने-अपने शब्द गढ़ कर अपना अनुभव कहा. मैं वर्तमान विज्ञान के आधार पर कहता हूँ कि मनुष्य के शरीर के अन्दर एक सफेद रंग का

दिमाग है और एक भूरे रंग का दिमाग है. सफेद रंग में जो शक्ति रहती है उससे भूरे रंग का दिमाग स्थित है और गतिमान है. भूरे रंग की शक्ति ख्याल को उत्पन्न करके स्थूल प्रकृति को बनाती है और उसमें गतिमान रहती है. मेरा अनुभव कहता है कि वह जो असली शक्ति सफेद रंग के दिमाग में काम करती है वह सबसे अलग वस्तु है. जिस-जिस प्रकार की प्रकृति से यह भूरे रंग का दिमाग या सफेद रंग का दिमाग बनता है अर्थात जिस-जिस प्रकार के इसमें केन्द्र हैं उसके अनुसार इनका खेल होता है या जीवन का खेल मजबूरन होता रहता है. उसी प्रकार के भान-बोधों, अहसासात के अधीन जो इस दिमाग के कारण उत्पन्न होते हैं, हमारा सुरत विवश है कि जीवन के खेल में, अज्ञान से या ज्ञान से वैसे ही खेल खेले. अब दो मार्ग आ गये--एक प्रवृत्ति, एक निवृत्ति. यदि इस जीवन के खेल को कोई अच्छा बनाना चाहता है तो उसके नियम और हैं और जो कोई इससे निकलना चाहता है उसके नियम और हैं.

निकलने के लिए केवल सत्संग, राज़ या भेद को समझना और सुरत को शब्दयोग द्वारा शब्द से भी बाहर निकाल देना. जब सुरत वहां चली जाती है दुनिया भी गुम (गुप्त) हो जाती है.

सुरति हुई अतिकर मगनानी। पुरुष अनामी जाय समानी।।

कबीर साहब के अनुसार--

जहां पुरुष तहां कछु नाहीं, कहे कबीर हम जानी।

केवल निज स्वरूप (ज़ात) रह जाता है. प्रवृत्ति मार्ग के लिए यह आवश्यक है कि यह दिमागी केन्द्र या चक्र और हमारा संकल्प दोनों को ऐसा बनाया जाये जिससे इसके काम सुखदायक और अच्छे हों जिससे जीवन यात्रा सुख से गुजर जाये.

तू कर नैनों दीदार वह पिंड से न्यारा है।

कबीर के इस शब्द की या कबीर के अन्य शब्दों की और राधास्वामी मत की अन्य अनुभवी वाणियों--- हिदायतनामा, बारह मासा की व्याख्या की है. इसलिये नहीं की कि मैं अपने आपको बड़ा सिद्ध करूं. मुझे अन्तर में एक तलाश थी. समझ लो शान्ति की या जो कुछ मेरा जीवन खेल करता था उस खेल को भूल जाने की, या उस मालिक की या निर्वाण की. स्वाभाविक रूप से मनुष्य दूसरे महापुरुषों के अनुभव से लाभ उठाता है, किन्तु मुझे दूसरों के अनुभव से यहां तक कि दाता दयाल महर्षि शिव के वचनों से भी पूरा लाभ न हुआ. वह पूरा लाभ क्या है अर्थात् पूर्ण शान्ति न मिली. अतः शान्ति या मालिक, या निर्वाण या मोक्ष या और कुछ कह लो, की स्वयं खोज की. वह खोज क्या है? इसका ज्ञान गुरु पदवी पर आने के बाद हुआ. जब इस विचार ने कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, मैं इस शान्ति तक पहुंचने को विवश हुआ. एक शारीरिक जीवन, दूसरा मानसिक और तीसरा आत्मिक जीवन है. इन तीनों से परे एक और अवस्था है जिसे चौथा पद कहा जाता है. मैं न तो शारीरिक जीवन में शरीर को भूल सकता हूं और न मन में रहते हुए मन को भूल सकता हूँ और न आत्मा में रहता हुआ आत्मा को भूल सकता हूँ और न चौथे पद में रहता हुआ

अपने आपको भूल सकता हूँ. इस शान्ति की खोज में अब एक ऐसी अवस्था आती रहती है जिसे पांचवां पद कहते हैं. चूंकि कबीर, स्वामी जी महाराज (राधास्वामी दयाल) की वाणियां मेरे अनुभव का समर्थन करती हैं, अतः इनकी वाणियों का सहारा लेता हूँ. यह जो तीन देश कहे गये हैं उनको सन्तों ने दयाल देश, काल देश, माया देश कहा है. किसी महापुरुष ने पांच कोष से परे बताया है. इस शरीर को बनाने वाली प्रकृति है मगर प्रकृति का काम किसी नियम से चलता है. दिमाग और शरीर बाहय ब्रह्मांड के लोकों या भंडारों के माद्दा (पदार्थों) से जो किरणों के द्वारा फैला हुआ है, पैदा हो जाता है, मनुष्य को उत्पन्न करने वाले और बनाने वाले उसके माँ-बाप हैं, भोजन है, संगत है तथा वातावरण है जो मनुष्य के दिमाग और शरीर पर प्रभाव डालते हैं. इसलिए यदि मानव जाति यह चाहती है कि मनुष्य जो पैदा होते हैं उनके जीवन अच्छे बनें तो यह माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे अच्छे शरीर वाले हों, श्रेष्ठ विचार वाले हों, शुद्ध भाव वाले हों. यह काल की रचना है. जिस प्रकार के शरीर वाले, आत्म अवस्था वाले माँ-बाप होंगे वैसी ही सन्तान होगी. यद्यपि शक्ति इन सब लोकों और ग्रहों की है और वह ईश्वर ही इन ग्रहों के रूप में प्रकट है मगर इनसे लाभ उठाना यह मनुष्य का अपना कर्त्तव्य है. इसलिए मैं गुरुमत का मानने वाला हूँ जो प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गों में मानव जाति की सहायता कर सकता है.

कल रेडियो पर स्वामी विवेकानन्द का जीवन चरित्र सुनाया जा रहा था. इनके माँ-बाप के दो लड़कियां थी. पुत्र नहीं था. इनकी माता ने देवी माता की बड़ी आराधना की और कुछ वर्षों के बाद स्वामी विवेकानन्द का जन्म हुआ. विवेकानन्द क्यों नाम कर गया? क्योंकि उसकी माता को अपनी प्रबल इच्छा थी. दाता दयाल महर्षि शिव का जन्म होने में भी यही बात है. इनके कुटुम्ब में इनके दादा शिव जी के भक्त थे. इनकी बड़ी इच्छा थी कि कोई इनके घर में शिव जी की दया से शिव रात्रि को लड़का हो और ऐसा ही हुआ. मेरा अपना जीवन सामने है. मेरे पिता के घर में विवाह के 14 वर्ष बाद तक कोई सन्तान नहीं हुई. मेरे पिता फकीर महात्माओं की सेवा करते थे. तो एक फकीर की दुआ थी और उसी ने मेरा नाम 'फकीर' मेरे जन्म से अढ़ाई वर्ष पहले रखा था. मेरे कहने का भाव यह है कि प्रवृत्ति मार्ग में सबसे पहले जिम्मेदारी माँ-बाप पर होती है. यह प्रवृत्ति मार्ग का गुरु ज्ञान है. हमारे पिछले ऋषि, महापुरुष गुरु के ही तो रूप थे. हमने उनकी आज्ञा की पालना नहीं की. केवल भावुकता में आकर ईश्वर भक्ति, राम भक्ति आदि की ओर अधिक ध्यान दिया. अब समय बदला है. लोग इन भक्तियों की परवाह नहीं करते. अपनी बुद्धि को अधिक समझते हैं. दाता दयाल महर्षि शिव ने आज्ञा दी थी कि फकीर समय बदल जायेगा. धर्म-सम्प्रदाय समाप्त हो जायेंगे. तुम चोला छोड़ने से पहले शिक्षा को बदल जाना ताकि दुनिया पथभ्रष्ट न हो जाये. इसलिये मैंने मौजूदा विज्ञान को सामने रखते हुए, तन दुरुस्ती, मन दुरुस्ती और दिमाग दुरुस्ती के विचारों का प्रचार किया है. यदि तुम ईश्वर को न मानो तो कोई हानि नहीं मगर प्रवृत्ति मार्ग के वे सिद्धांत जिनसे मनुष्य के दिमाग व संकल्प--तन दुरुस्ती, मन दुरुस्ती और दिमाग

दुरुस्ती के रह सकें उन सिद्धांतों के आमिल (आचरण करने वाले) बनो. जो व्यक्ति स्त्री या पुरुष विश्वासी होता है किसी बात का, उसकी आत्मा में शक्ति होती है. अतः विश्वासी मां-बाप की सन्तान हमेशा आत्मनिष्ठा की ओर जायेगी. जैसे भाव-विचार माँ-बाप के हैं, जैसा भोजन वे खाते हैं, उसी के अनुसार बच्चे का दिमाग और मन बनेगा. फिर उसकी शिक्षा व जन्म और संगत के प्रभाव से उसमें रद्दो बदल होता रहता है. मेरे संस्कार किसी हद तक ठीक थे. चूंकि संस्कार था, वह दाता के चरणों में ले गया. स्वयं मेरे विचारों में परिवर्तन आता गया. अब मैंने प्रवृत्ति मार्ग के प्राप्त करने या उस पर चलने के तरीके बता दिये. संस्कार. संस्कार का नाम ही नामदान है.
प्राचीन काल में निवृत्ति मार्ग के लिए संस्कार देने वाले विशेष-विशेष व्यक्ति होते थे, जो क्रियात्मक (अमली) रूप से संन्यास धारण करने वाले आत्मनेष्टी होते थे और प्रवृत्ति मार्ग का संस्कार देने वाले वे हुआ करते थे जो प्रवृत्ति मार्ग में परिपूर्ण होते थे. मैंने प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग दोनों को एक लड़ी में पिरो दिया है. वह यह कि प्रवृत्ति मार्ग में अपने संकल्प पर अधिकार (काबू) पाओ और निवृत्ति मार्ग के लिए केवल सुरत शब्द योग है. इससे ख्याल के अनुकूल रखने के लिए 'शिवसंकल्पमस्तु' का नियम है जो वेद मार्ग है और निवृत्ति मार्ग के लिए शब्द योग है. चूंकि दुनिया इस समय अधिक कांट-छांट करने वाली है. विश्वास नहीं है, इसलिए वाणी के लिए या लेखबद्ध करने के लिए ऐसी युक्तियां वर्णन करता रहता हूं ताकि मनुष्य को विश्वास हो जाये कि यह मार्ग ठीक है. सत्संग के प्रवचनों से बुद्धि निर्मल हो जाती है. एक तो सत्संग होता है आंख से, छूने से, हित से, प्रेम से किसी को कोई वस्तु दे देना, बशर्ते कि लेने वाला अधिकारी हो. एक शिक्षा होती है, एक दीक्षा होती है. इसलिए इस कलियुग में केवल सत्संग और सत्संग के वचनों को समझना, गुनना और अमल करना ही मुख्य धर्म है.
सत्संग प्रवचन

मानवता मन्दिर होशियारपुर 12-6-1967

बंदी छोर

(आज सत्संग में यह शब्द पढ़ा गया)

बंदी छोर कबीर, भक्ति मोहि दीजिये।
बांह गहे की लाज, गहर मत कीजिये।।
काग बरन छुड़ाय, हंस बुधि लाइये।
पूरन पद को देव, महा सुख पाइये।।

कोई समय ऐसा था जब मेरे दिल के अन्दर यह भाव जो इस शब्द में मौजूद है लहरें मारा करता था और मैं अनेक प्रकार के अपने बनाये भजनों द्वारा बाहर में और अन्तर में इस भाव को उभारा

करता था. इस शब्द में लिखा है--'परम पद पाइये'. सम्भव है कबीर का परम पद कोई और हो किन्तु मुझे जो परमपद का अनुभव हुआ है वह कहता हूँ. 'परम पद' क्या है? मेरे अस्तित्व का ऐसी अवस्था में रहना जहां न प्रेम, न भक्ति, न योग, न ज्ञान, न ध्यान, न मुक्ति हो, न इनकी इच्छा हो और न परमात्मा या मालिक की लालसा बाकी रहे, परम पद है. मैं ऐसा ही समझता हूँ. जब मैं किसी के अन्तर नहीं जाता तो सिद्ध हो गया कि मेरे अन्तर में जिसको मैं प्रेम करता था, भक्ति करता था, जिसको मिलना चाहता था, वह मेरा अपना ही मन था. यही बात कबीर ने कही है-

काग बरन छुड़ाय, हंस बुद्धि लाइये।
पूरन पद को देव, महा सुख पाइये।।
जो तुम सरनै आयो, बचन इक मानिये।
भौ सागर बहै जोर, सुरत निज राखिये।।

कबीर कहता है--हंस बुद्धि लाइये. हंस गति क्या है? अनुभव और विवेक का हो जाना. अनुभव और विवेक क्या निकला? यही कि जितने मन के अन्तर से भाव-विचार उठते हैं ये सब माया हैं. यही बात हिन्दू शास्त्र कहते हैं. जब माया के रूप का ज्ञान हो जाता है तो फिर काम बुद्धि मिट जाती है. अब सोचता हूँ कि क्या इसका समर्थन किसी दूसरे संत ने भी किया है कि यही परम पद है. दाता दयाल महर्षि 'शिव' का एक शब्द है :-

मैं ना मैं ना रे मैंना।
मैंना तन पिंजरे में रहकर बोली बोल रे मैंना।।
जब लग 'मैं' है तब लग 'तू' है, मोर तोर का झगड़ा।
मैं जब गया गया तब तू भी अब किसका है रगड़ा।
सतगुरु दीनी सैना।।
जो तू कहता वह अन्धा है, मैं कहता दीवाना।
मैं मैं तू तू को जो छोड़े, वही है चतुर सयाना।
यही है सच्ची बैना।।
जब मैं हूं तब गुरु नहीं है, गुरु जब है मैं नाहीं।
प्रेम की गली तंग है भाई, दोनों कैसे समाहीं।
दोनों रहते हैं ना।।
मोर तोर माया की रसरी, प्रानी फांस फसाने।
तोड़ के रसरी हो गये न्यारे, फिर नहीं वह भरमाने।
हो गये सच्चे मैंना।।
बकरी मैं कह गला कटावे, मैं मैं कह मिमियावे।

मैंना मैंना वचन सुनावे, बेसन सक्कर खावे।
कैसी मीठी है मैंना।।
मैंना मैंना मैंना बोले, बोल का रटन लगावे।
मैं को त्याग शान्त बन जावे, सुख आनन्द धुन गावे।
पावे नित चैना।।
'मैं' 'तू' भरम विकास है मन का, मन माया का साथी।
जो मैं कहेगा दुख से मरेगा, कुचले अहम का हाथी।
मैं तू दोनों हैं ना।।
सुरत की पक्षी मैना बन कर, मैंना मैंना कहती।
सुन्न वृक्ष की डाल पै बैठी दुख सुख अब नहिं सहती।
दिन नहीं जहां रैना।।
मैं ना मैंना तू ना तू ना, यह सत गुरु की बानी।
बानी सुन सुन जो चित लावे, बने सहज निरवानी।
माया फिर कभी व्यापै ना।।
राधास्वामी शब्द सुरत की, धुन गा गा के सुनावें।
जो गावें नित गाके सुनावें, भव पिंजरे नहीं आवें।
वह बन जावें मैंना।।

यह दाता दयाल का शब्द है जो मुझको हौसला देता है कि इस अवस्था का आना ही अध्यात्म जीवन की खोज का परिणाम होना था. इसके अतिरिक्त स्वामी जी के जेठ मास के बारह मासा का शब्द पुष्टि करता है. वह यह है-
जेठ महीना जेठा भारी।जीवन हिरदे तपन करारी।।
सन्त दयाल जीव हितकारी। भेद कहें वह निजकर भारी।।
नहीं खालिक मखलूक न खिलकत। करता कारन काज न दिक्कत।।
द्रष्टा द्रष्ट नहीं कुछ दरसत। बाच लक्ष नहिं पद न पदारथ।।
जात सिफात न अव्वल आखिर। गुप्त न परगट बातिन जाहिर।।
राम रहीम करीम न केसो। कुछ नहिं, कुछ नहिं, कुछ नहिं था सो।।
स्मृति शास्त्र न गीता भागवत।कथा पुरान न वक्ता कीरत।।
कहं लग कहूं नहिं था कोई।चारों लोक रचना नहिं होई।।
जो कुछ था अब कह भाखूं।उनमुन सुन्न विसमाधी राखूं।।
यह शब्द मुझको विश्वास दिलाता है कि ऐसा होना ही था. आदि भी यही अवस्था थी और अन्त

भी यही अवस्था. तो मुझको अपने आप में जो कुछ मेरी खोज का परिणाम निकला वह सच्चा प्रतीत होता है.

दसा द्वार बेकार, न वो नाटिका बहै। सुरत नहीं ठहराय, लगन कैसे लगे।।
जैसे मीन सनेह, सदा जल में रहै। जल बिन त्याग प्रान, लगन ऐसी लगै।।

जल में मीन कैसे रहती है इसका तो अनुभव मछली को ही होगा. हम तो अनुमान लगा सकते हैं. सुरत का, अपने अस्तित्व का निर्बन्ध हो जाना, जैसे मैंने पहले कहा है कि परम शान्ति या इष्ट पद है मगर संसार के प्राणी इस अवस्था को जब तक सांसारिक जीवन की चाह है, प्राप्त नहीं कर सकते. कोई-कोई जीव इसका अधिकारी होता है. कबीर के इस शब्द में 'परमपद' का उल्लेख है. शरीर में रहता हूँ. संसारी जीवों के खेलों को देखता हूँ. उनके मन की दशाओं के कारण जो दुख-सुख वह महसूस करते हैं उनका प्रभाव जब पड़ता है उनका इलाज जब सोचता हूँ तो कुछ समझ में नहीं आता. यहां आकर सिवाय इसके कि मौज का खेल समझ कर खुश रहूं और कोई चारा नहीं. यदि कोई चारा है तो यह कि मनुष्य सच्चा होकर उस मालिक सत कबीर, राधास्वामी या कोई और नाम रख लो, से प्रार्थना करता रहे कि उसका जीवन सुखमय और शान्तिमय रहे. यही कबीर ने कहा है:-

मेटो सकल विचार, भार सिर लेइयो। तुमहि में रहों समाइ, आपन कर लेइयो।।

प्रार्थना करता रहे, मांगता रहे उसके दरबार से कि शान्ति मिले, प्रेम मिले, भक्ति मिले. और कोई इलाज समझ नहीं आता. मैं यही मांगता रहा. जो मांगा अब मिल गया.

कहैं कबीर बिचारि, सोई टकसार है। हंस चले सतलोक, तो नाम अधार है।।

तो सब से सुगम तरीका यह है कि अपनी बुद्धि को छोड़ कर, चिन्ता को छोड़ कर शरणागतं हो. इस प्रकार चलते रहने से चूंकि मुझे सफलता हुई इसलिए दूसरों को भी यही राय दे सकता हूँ.

सत्संग प्रवचन

(मानवता मन्दिर, होशियारपुर, 11-7-1967)

प्रार्थना

सत्संग में यह शब्द पढ़ा गया :-

अब की बार उबारिये, मेरी अरजी दीन दयाल हो।।
आई थी वा देस से हो, भई परदेसिन नारि हो।
वा मारग मोहे भूलि गो, जासे बिसर गयो निज नाम हो।।

इस शब्द में प्रार्थना है सत्गुरु दयाल से कि इस बार इस जीवन में ऐसी अवस्था प्रदान की जाये कि यह जो मन है या हमारा जीवन है इसमें विक्षेप न आये.

जुगन जुगन भरमत फिरी हो, जम के हाथ बिकाय।

कर जोरे बिनती करूं हो, मिल बिछड़ूं नहिं होय हो।।

इस कड़ी में यह प्रार्थना की गई है कि मिल कर फिर बिछुड़न न हो. मैंने अपने आपको संत सत्गुरु जो कहा है उसके पीछे मेरे अपने जीवन का अनुभव है. वह अनुभव क्या है? जीवन कोई भी है वनस्पति का है, पशुओं का है, मनुष्य का है, जहां भी जीवन है, वहां मेरी तुच्छ बुद्धि में किसी सूरत में कोई जीवन उस अवस्था में सदा नहीं रह सकता जहां बिछुड़न न हो. बिछुड़ना क्या है, वह अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ. जब तक मनुष्य सुरत, मालिक अथवा अपने स्वरूप की या उस अवस्था की, जहां उसके अपने सिवाय दूसरा कोई न हो, प्राप्ति न कर ले दूसरे शब्दों में विस्माधि, उनमुन या परम शान्ति प्राप्त न हो, तो जब तक जीवन है यह कैसे सम्भव है कि मनुष्य का आपा जो मनुष्य स्वयं आप है, उसमें विक्षेप न हो. जीवन में विक्षेप का आना प्राकृतिक है. कहने को चाहे कोई सन्त, कोई महात्मा कुछ कहे, जीवन नाम है गति का, गति नाम है काल का. जहां तक गति है वहां शान्ति कैसी! यह मैं सारे जीवन की दौड़-धूप और उस शान्ति की खोज के सिलसिले में जो अनुभव हुआ, वह कहता हूँ. फिर क्या करना चाहिये? अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि क्या कोई इलाज है? है, मगर वह सत्गुरु के हाथ है.

दाता दयाल ने मेरा इलाज कर दिया. क्या? यह कि मुझे यह विश्वास हो गया कि मेरे मन के अन्तर से जितने भाव विचार, फुरनायें तथा रूप-रंग उठते रहते हैं ये जीवन के चमत्कार हैं. मेरी अपनी प्रकृति के अनुसार उनका उठना अवश्यंभावी है. हर प्रकार का जीवन, चाहे वह किसी प्रकार का है और जिस प्रकार की प्रकृति से उनका जीवन बना है, वह जीवन अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार खेल खेलने के लिए विवश है. चूंकि मुझको दाता दयाल से यह विश्वास हो चुका है और यह विश्वास सत्संगियों के अनुभवों ने दे दिया कि जितने खेल मनुष्य करता है, ये प्राकृतिक हैं.

हाल ही में प्रयागपुर गया. वहां एक डाक्टर संतराम हैं. वह बाबा सावनसिंह जी से दीक्षित हैं. उन्होंने कहा कि वह हिचकी रोग से बड़े बीमार हुए. उनका लड़का भी डाक्टर है. अन्त समय आ पहुंचा. उनका लड़का मेरा विश्वासी है. वह लड़का मेरे पास से प्रसाद ले गया था. उसने सन्तराम से कहा कि पिताजी! यह अन्तिम इलाज है. बाबा जी का प्रसाद खा लो और अब कुछ नहीं हो सकता. सन्तराम कहता है कि प्रसाद खाने के बाद उसको कुछ गुनूदगी आई और मेरा रूप उसके अन्तर प्रकट हुआ और कहा कि तू निरोग हो जायेगा. उसको नींद आ गई. सुबह उठा. बिल्कुल तन्दुरुस्त था. ऐ संसार के प्राणियों! मैंने अपने आपको सन्त इसलिए नहीं कहा कि मैं लोगों के अन्तर में प्रकट होता हूँ या दवायें बताता हूँ, या मरते समय साथ ले जाता हूँ. किन्तु इसलिए कहा

कि मैं सच्चा ज्ञान देता हूँ, सच्चा रहस्य बताता हूँ. वह रहस्य या भेद यह है कि इस जीवन में जिस प्रकार के संस्कार, ख्याल किसी के दिमाग पर पड़े हैं या वह पिछले जन्मों के कामों के कारण से हो या इस जन्म के बाह्य संस्कार हों, वे मनुष्य के अन्तर फुरते हैं. फिर इस जीवन में तुम्हारा रक्षक कौन है? संस्कार, बाह्य प्रभाव! जैसा ख्याल वैसा हाल! तो इस जीवन में इस जीवन को या इस जीवन के खेल को बेहतर बनाना संस्कारों के अधीन है. सन्त सत्गुरु क्या करता है? वह संस्कार देता है, ख्याल देता है कि इस जीवन में जो कि प्राकृतिक है, मायावी है, गति में रहता है उसको 'शिवसंकल्पमस्तु' कल्याणकारी विचारों का मिलना अत्यन्त आवश्यक है. चूंकि मुझे यह ज्ञान हो चुका है इसलिये जब कभी मेरी अपनी प्रकृति में विक्षेप होता है तो यह समझ, यह ज्ञान कि भाई यह बाह्य प्रभावों या मेरे पिछले कर्मों का फल है, मैं उस विक्षेप से जो दुख होता है, या खुशी होती है, इसमें फंसता नहीं और अपना इष्ट वह रखता हूँ जिसको कोई निज स्वरूप कहता है कोई मालिक कहता है, कोई राम कहता है, कोई सत् कहता है और अपने आपको उसके सुपुर्द करने का साधन करता रहता हूँ. इसका नाम है भक्ति मार्ग. इस अनुभव से मैं अपने जीवन को इस बाह्य अर्थात गतिशील जगत में समता, बैलेंस (balance), रखने का प्रयत्न करता रहता हूँ. यह मेरे जीवन का अनुभव है. रोता पीटता नहीं, घबराता नहीं. गतिशील जगत में या काल और माया की दुनिया में मेरी समझ में यह असम्भव है कि मनुष्य की सुरत सदा सर्वदा एक रस रह सके. मुझे दाता दयाल ने बहुत कुछ समझाया. एक शब्द में वे लिखते हैं:-

एक दशा में कोई न बरते, ऋषि मुनि ज्ञानी ध्यानी।
पंडित कभी अनाड़ी होते, अनाड़ी पंडित ज्ञानी।।

मैं यह सत्संग का काम करता हूँ. यह गुरु ऋण है. यह गुरु ऋण क्या है? मुझे एक दिया हुआ संस्कार ही है. एक ख्याल ही है. संस्कार का प्रभाव अवश्य होता है. अतः जो जीव यह चाहते हैं और गुरुओं से यह आशा रखते हैं और उनकी सेवा इस ख्याल से करते हैं कि वह कोई फूंक्र मार देगा और तुम हमेशा के लिए इस जीवन में उस अवस्था को पहुंच जाओगे, यह गलती है. मैं जब प्रयागपुर में गया, सत्संग हुआ, मैंने स्पष्ट वर्णन से काम लिया. वह कहता है महाराज! आप हमारा विश्वास तोड़ते हैं. मैं हँसा. मित्र! पहले अपना आप, पीछे माँ और बाप. तेरे विश्वास को देखूं या अपने जीवन को देखूं. जब मैं तेरे या किसी के अन्तर नहीं गया और झूठ कहकर यह सिद्ध करूं कि मैं गया तो यह हेरा-फेरी, धोखेबाज़ी, मेरे अपने कर्म से हुई. इसका संस्कार तो मेरे मन पर रहेगा. फिर मैं इस 420 (fraud and cheat) के संस्कार से बच कैसे सकता हूँ. मैंने स्पष्ट वर्णन से इसीलिए काम लिया कि अपने आपको साफ रख सकूं. इसलिए गुरु अच्छा संस्कार देता है, अच्छा ख्याल देता है मगर इस ख्याल की आवश्यकता आम पब्लिक को नहीं है. वह तो इस जीवन को, जो क्षण भंगुर है, सुखी रखने, धन, मान-बड़ाई के ख्याल से सारे धर्म कर्म तथा जप-तप करते हैं.

विषय नहीं विकरार है हो, मन हठ करिया धार।
मोह मगर वाके घाट में, जिन खायो सुर नर झारि हो।।
इस मान-सम्मान या मोह-ममता के वश में आकर समस्त सम्प्रदाय, पंथ, पीर आदि फंसे हैं. कोई बिरला संत सत्गुरु होगा जो इस चक्र में नहीं आया. आज डॉ. सरदार मुंशी सिंह गरेवाल दूर से सत्संग के लिए आये. उनकी स्त्री भी साथ है. मानवता मन्दिर में भी पांच रुपया मासिक की सेवा करते रहते हैं. सोचता हूँ ये लोग आते हैं मैं उनकी क्या सेवा करूं. मैं यही सेवा कर सकता हूँ जो करता रहता हूँ. इस संसार के अन्दर जब तक जीवन है विक्षेप का होना लाजिमी है. उससे बचाव की सूरत एक तो गुरु ज्ञान है जो सत्संग में मिलता है. वह गुरु के वचन के श्रवण मनन और निदिध्यासन से मिलता है. दूसरा अपनी सुरत को उस मालिक, निज स्वरूप के प्रेम में लगाने से मिलता है. प्रारम्भ में इस माया देश और काल देश में रहता हुआ मनुष्य काल और माया के कानून को छोड़ नहीं सकता. चूंकि यह जगत नाम और रूप का है इसलिए नाम और रूप के सहारे ही तुम अपना जीवन बना सकते हो और वह नाम है अजपा जाप. ध्यान करना है गुरु स्वरूप को पूर्ण मानते हुए. जो अपने अन्तर में सत्संग के वचनों को याद रखते हुए चलता रहता है और जिस समय मन निर्मल हो जाता है तो शब्द और प्रकाश खुल जाता है. यदि शब्द और प्रकाश खुल जाये तो फिर वर्णात्मक नाम या गुरु स्वरूप की भी अधिक मुख्यता नहीं रहती मगर मेरा अपना अनुभव यह कहता है कि मनुष्य लाख शब्द और प्रकाश का साधक हो, जब वह मन में आयेगा तो उसके मन को ठहराने के लिए मन के देश में सुमिरन अर्थात अजपा-जाप और रूप का ध्यान परम आवश्यक है. अतः मैंने सरदार साहब को जो मेरे अनुभव में आया वह कहा. मैं यही कर सकता हूँ कि मैं सच्चे हृदय से दूसरों का भला चाहता हूँ. यदि मेरे भला चाहने से किसी का भला हो सकता है तो सौभाग्य की बात. मेरा अनुभव यह सिद्ध करता है कि विश्वास बड़ी चीज है. डाक्टर सन्तराम के लड़के का मुझ पर विश्वास है. चूंकि उसका विश्वास है, उसका दुनियावी जीवन जैसा वह चाहता है वैसा बनता रहता है.
शब्द जहाज कबीर के हो, सतगुरु खेवनहार।
कोई कोई हंसा उतरि हैं हो, पल में देंउ छोड़ाई हो।।
कबीर का शब्द-जहाज़ क्या है? अन्तर का शब्द तो दूर रहा बाहर में बाहरी गुरु के वचन जो हैं वह सब से पहला जहाज़ है. जिन वचनों को समझ कर इंसान का जीवन बहुत हद तक सुखदाई हो सकता है और अन्तरी शब्द इंसान की सुरत को उस सच्चे मालिक या निज स्वरूप में ठहरा देता है.

सत्संग प्रवचन
(मानवता मंदिर 28-7-1967)

आदि अवस्था

आज सत्संग में यह शब्द पढ़ा गयाः-
कबीरा कब से भये बैरागी, तुम्हरी सुरत कहां को लागी।
उत्तर;- धुंधमई का मेला नाहीं, नहिं गुरु नहिं चेला।
सकल पसारा जेहि दिन नाहीं, जेहि दिन पुरुष अकेला।
गोरख हम तब के वैरागी, हमरी सुरत नाम से लागी।
यदि आज यह अनुभव न होता कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता तो शायद मैं इस शब्द के अर्थ को बिल्कुल न समझ सकता. गोरख प्रश्न करता है. गोरख योगी था. योग दो वस्तुओं के मिलाप का नाम है. मैं अपने अन्तर में कभी किसी ख्याल को लेकर उस पर विचार करता था. कभी राम, कृष्ण या दाता दयाल की मूर्ति बनाकर आनन्द लेता था. इस प्रकार के योगों से मन के अन्दर शक्ति आती थी. जो ख्याल करता वह पूरा होता रहता था. चूंकि उस मालिक से मिलने की इच्छा थी तो जो अनुभव मुझे गुरु पद पर आने से हुआ उससे यह विश्वास हुआ कि जो कुछ मैं सोचता था, देखता था वह तो वह था जो मेरे अन्तर से पैदा होता था. अतः विवश हुआ कि उस मालिक को ढूंढूं जहां से कि मैं आया था. कबीर का जो कथन है:-
धुंधमई का मेला नाहीं, नहिं गुरु नहिं चेला।
यह धुंधमई का मेला क्या है? धुंधमई कहते हैं जब प्रातः काल को धुंध छा जाती है और कुछ दिखाई नहीं देता. जब मनुष्य की बुद्धि किसी विचार को लेकर उस मालिक की खोज करती है और उसकी बुद्धि काम नहीं करती तो उस बुद्धि के काम न करने का नाम धुंधमई है. कबीर का क्या भाव होगा या किस भाव से यह शब्द लिखा है मुझे नहीं मालूम, मैं कहता हूँ कि बुद्धि से यदि कोई चाहे कि मैं उस मालिक का दर्शन कर सकूं तो असम्भव है. साथ ही जब तक कोई आदमी किसी रूप को चाहे वह किसी देवता का है या गुरु का है या प्रकाश रूपी गुरु की आंख, नाक, मस्तक आदि को प्रकाशवान रूप में देखता है, वह उस मालिक तक नहीं पहुंच सकता और न कोई पहुंचा. क्यों? क्योंकि जो व्यक्ति मुझको अपने अन्तर प्रकाशवान कमल के फूल पर देखते हैं और मैं वहां नहीं होता तो विवश हो गया हूँ कि कबीर के इस शब्द के साथ सहमत हूँ.
कबीर का कथन सत्य है कि हमारा जो आदि है जहां से हम आये हैं वह वह अवस्था है जहां न तो धुंधमई है अर्थात् न बुद्धि है और न स्वामी और सेवक, न गुरु है न चेला है. कबीर भी नहीं, मैं भी

नहीं. हर एक मनुष्य का वह आदि है जहां से हम इस रचना के सिलसिले में इस संसार में आये हैं.

ब्रह्म नहीं जब टोपी दीन्हा, विष्णु नहीं जब टीका।
सिव सकती कै जन्मौ नाहीं, जबे जोग हम सीखा।।

गोरख को उत्तर देते हुये कबीर कहते हैं कि हम उस समय से वैरागी है जब ब्रह्मा ने रचना भी नहीं की थी. ब्रह्मा वह शक्ति है जो हमारे मन में संकल्प पैदा करती, वासनी उठाती है. विष्णु वह शक्ति है जो हमारे अन्तर उत्पन्न हुई वासना की पूर्ति करके हमें आनन्द देती है. शिव वह शक्ति है जो उत्पन्न हुई और विकसित हुई वासनाओं को मिटा देती है, समाप्त कर देती है. उस अवस्था में, जिसका मैंने वर्णन किया, न ब्रह्मा होता है न कोई वासना उठती है और न वासना की पूर्ति होती है और न उसके विनाश का प्रश्न पैदा होता है.

सतयुग में हम पहिरि पांवरी, त्रेता झोरी डंडा।

कबीर का इससे क्या भाव है वह कबीर जाने मगर जो मैं समझता हूँ, वह कहता हूँ. सत्युग हमारा बालपन का समय है. हमारी सुरत की धार या वह जो हम हैं, आदि घर से आये हैं. इस शरीर में आने से इस शरीर में ठहर जाते हैं, खड़ाऊं के सहारे हो जाते हैं, शरीर में सुरत का ठहराव आ जाता है. यह सत्युग है. झोली डंडा क्या होता है? साधु लोग रोटी खाने के लिये झोली पहन कर डंडा लेकर मांगते फिरते हैं अपनी उदर पूर्ति के लिये. जब बचपन से आदमी बड़ा होता है तो वह उदर के भरने के लिये तरह-तरह की आशायें रख कर के फिरता है, काम करता है, नौकरी करता है, खेती करता है. ऐसा समझता हूँ.

द्वापर में हम अड़बंद पहिरा, कलऊ फिरयौ नौ खंडा।

'द्वापर में हमने लंगोट पहिरा.' लंगोट का अर्थ है इद्रियों का निरोध करना. जब हम दुनिया के कश्मकश में असफल होते हैं तो वह जो हमारी वासनायें उठती हैं वे सब की सब पूरी नहीं हो सकतीं. सब्र-संतोष से काम लेने की कोशिश करते हैं. इसका नाम है 'द्वापर में हम अड़बंद पहिरा'. 'कलियुग फिरयो नौ खंडा.' हम जब्त या संयम से भी काम लेते हैं मगर फिर भी शान्ति नहीं मिलती. बुद्धि चंचल हो जाती है. शान्ति नहीं मिलती. फिर क्या होता है-

काशी में हम प्रकट भये हैं, रामानन्द चिताये।

हमारा जो यह शरीर है यह काशी है. कलियुग में जब ये सब बातें हो जाती हैं, जीव अशान्त हो जाता है. फिर उसको गुरु मिलता है. कबीर का गुरु रामानन्द था. अब सबको तो रामानन्द मिलने से रहा. गुरु उसको चेताता है जिस तरह कि दाता दयाल ने मुझको चेताया. क्या चेतावनी दी? जो चेतावनी मुझे मिली वह बताता हूँ-- दाता दयाल ने सन् 1921 ई. में मेरे नाम मेरे चिताने के लिए 'काल चक्र' के शीर्षक से एक शब्द लिखा था--

काल चक्र इक सहज हिंडोला, झूले अचरज न्यारा।

सब कोई झूले झूला चढ़ कर, काल झुलावन हारा।।
(पूरा शब्द 'फकीर भजनावली' में छपा हुआ है.) इस शब्द में उन्होंने मुझे यह लिखा-
अब के चूके मौज न ऐसी, त्याग काल की आसा।
आज का साधन आज ही कर ले, कल को होगा उदासा।।
राधास्वामी दया के सागर, तेरे कारन आये।
उनके चरन में शीश झुका कर, अपना काज बना ले।।
राधास्वामी राधास्वामी, राधास्वामी गाना।
मन बच कर्म से भक्ति कमाना, भूले बाहर आना।।
वह जो राधास्वामी गाना है वह क्या है? वह है सुरत से शब्द को सुनना. यह शब्द ही नाम है मगर यह नाम उस समय प्रकट होता है जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि जितने रूप-रंग-रेखायें तथा विचार-भाव मनुष्य के अन्तर पैदा होते हैं ये माया हैं, कल्पित हैं. मुझे यह ज्ञान नहीं होता था. इसी ज्ञान को देने को मुझे गुरु पदवी दी थी. अब जाकर समझ में आया कि मैं नहीं प्रत्येक व्यक्ति 'आदि सुरत' है. शब्द जब होता है किसी वस्तु की गति से होता है या टकराने से होता है. तो जितने शब्द हमारे अन्तर में किसी वासना को रखते हुए, किसी दूसरे ख्याल, मूर्ति या चित्र के साथ जुड़ने से पैदा होते हैं वे सार शब्द या सत् शब्द नहीं हो सकते. बात बहुत ऊँची है. असली शब्द हमारे अपने रूप, जो अकाल, अनाम, परमतत्त्व की स्वाभाविक हिलोर गति है, उसका नाम है.
सहजै सहजै मेला होइगा, जागी भगति उतंगा।
कहै कबीर सुनो हो गोरख, चलो सबद के संगा।।
कबीर गोरखनाथ से कहते हैं कि इस मंजिल तक पहुंचने के लिए सहज रास्ते से चलो. जल्दी मत करो. जब तक आदमी के अन्तर में केवल सत्यता, असलियत की सच्ची तड़प पैदा नहीं होगी तब तक यह वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती. मुझमें यह भावना थी. मैं असलियत को देखना चाहता था. अगर अपने मान-बड़ाई और धन-संपत्ति की इच्छा होती तो मैं रहस्य को गोपनीय (गुप्त) रखता. जितना चाहे धन, मान ले लेता. ऐ मेरी विचारधारा के पढ़ने वालो! मैंने यह काम क्यों किया? कुछ तो मेरे प्रारब्ध कर्म समझ लो. कुछ मालिक की मौज, कुछ ऋण समझ लो. मेरी नीयत केवल गरीबों को चिताने की है. जो मेरी तरह परम शान्ति या असलियत के प्राप्त करने के इच्छुक हैं, सहज-सहज चलते रहें. यह प्रकृति, माया इतनी बलवान हैं कि मुझ पर भी हमला करती रहती है. अभ्यास में जाता हूँ. यह जो आनन्द देने वाले दृश्य, प्रेम करने वाला भाव, दाता दयाल से प्रेम अथवा अपने अनुभव को वर्णन करने का भाव यह भी माया ही है. यह मेरी सुरत को अपने उस असली नाम से नीचे लाने की कोशिश करता रहता है. तो जब तक जीना तब तक सीना. बात मेरी समझ में आ गई. सफर करता हुआ चला जा रहा हूँ. जीवन का क्या

परिणाम हो उसको नहीं जानता. मौज का खेल है. सत्यता के साथ जितनी मेरी ड्यूटी थी वह कर चला.

सत्संग प्रवचन
(मानवता मन्दिर 27-7-67)

सतलोक

चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ यह संसारा हो।
मेरे दिल के अन्दर एक खोज थी और किसी हद तक अब भी है. यह खोज उस समय पैदा होती है जब मेरा अस्तित्व शारीरिक और मानसिक भान-बोध में आता है. सत कबीर का यह शब्द है जो धर्मदास को कहा गया है :-
चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ यह संसारा हो।
यह संसार काल है राजा, करम को जाल पसारा हो।।
वे कहते हैं कि यह संसार काल का पसारा है. काल कहते हैं समय को, गति को. तो सतलोक क्या हुआ? हमारी वह अवस्था जहां हमारे अन्तर गति नहीं होती, कोई दृश्य नहीं होता, कोई वस्तु हमारे सामने नहीं आती. मैं अपने आप से पूछता हूँ कि क्या कोई ऐसी अवस्था है. 'हां' है. मैं अनुभव करता हूँ मगर सचाई यह है कि वहां स्थायी रूप से अथवा हर समय ठहरा नहीं जाता. हाँ कबीर आज मिलता या धर्मदास मिलता तो उनसे पूछता कि क्या तुम हमेशा उस अवस्था में रह सकते हो.
मुझे इस अवस्था का ज्ञान या अनुभव केवल इस ख्याल ने दिलाया कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता. यदि यह अनुभव न होता तो शायद इस सतलोक का विश्वास ही न आता. जो कुछ कोई देखता है वह उसका अपना ही संसार है. हर वस्तु मनुष्य का अपना ही आपा है. उसके सामने जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, अन्तर में या बाहर में, वह संसार है. सम+ सार=संसार. सम कहते हैं समान को, बराबर को. कबीर कहता तो सत्य है मगर संसार के प्राणियों को क्या इसकी आवश्यकता है? नहीं. कोई-कोई जीव अधिकारी होता है. मैं भी अधिकारी नहीं था. दाता दयाल की दया से अधिकारी हो गया मगर अभी संसार मेरा छूटा नहीं. यद्यपि यह संसार अब दुखदाई नहीं होता और न सुखदाई होता है मगर अभी मौजूद है. सत्संग कराता हूँ. यह भी तो मेरा संसार ही है. सतलोक है. इतना अनुभव है मगर जिसको मैं सतलोक कहता हूँ क्या पता संतों का सतलोक कोई और हो. यह वर्णन शैली रोचक है और होनी भी चाहिये. बिना रोचकता के आकर्षण नहीं होता.

चौदह खण्ड बसै जाके मुख, सब को करत अहारा हो।।
जारि बारि कोयला कर डारत, फिर फिर दे औतारा हो।।
ब्रह्मा बिस्नु सिव तन धरि आये, और को कौन बिचारा हो।।
सोचता हूँ यह सृष्टि अनादि है. यदि यह मान लूँ कि सन्तों की शिक्षा से आवागमन छूट जाता है तो ख्याल करता हूँ कि सत का प्राकट्य कलियुग में हुआ तो आबादी तो इतनी बढ़ी कि जिसका कोई हिसाब नहीं. घट जानी चाहिए थी. इसे जानने में मेरा दिमाग़ फेल होता है. मैं तो हौसले से कहना चाहता हूँ कि कुदरत के भेद का पता शायद कबीर को भी न लगा हो. इतना ही लगा कि वे इस संसार से उस ज्ञान के आधार पर, जो मैंने संतमत में समझा, शायद आप अलग हो गये हों. कई बार सोचता हूँ कि अलग हो गये तो क्या हो गया. जो अलग हो गया उसके लिए संसार नहीं रहा. दुनिया जैसी है वैसी बनी हुई है. सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के चक्र आते रहते हैं. क्या कहूं कि कितने मनुष्य या कितनी आत्माएँ इस संसार से निकल गईं! समझ यही आई कि आप निकल गया उसके लिये संसार भी निकल गया.
मैं बचपन से उस मालिक से मिलने की प्रबल लालसा करता था. कभी उसको किसी मानव के रूप में पूजा, कभी किसी रूप में पूजा. अब मेरे अनुभव में यह आया कि जब तक किसी मनुष्य की सुरत किसी मनुष्य को पूजती है या उस मालिक को किसी मानव रूप में पूजती रहती है, उसका यह संसार समाप्त नहीं हो सकता क्योंकि मानव कोई हो मानव रूप में ब्रहमा हो, विष्णु हो, शिव हो, कोई गुरु हो, कोई महात्मा हो, मानव में किसी न किसी वासना का रहना मेरी समझ में लाजिमी है. इसलिए जो मनुष्य इस संसार से निकलना चाहता है उसको अपना इष्ट वह जो शक्ति या शब्द जो आदि गति कहलाती है उसका इष्ट बांधना लाजिमी है. यह मेरा अनुभव है. जीवन भर उस मालिक को किसी न किसी रूप में मानता आ रहा हूँ. तो अपना अनुभव कहता हूँ कि जब तक मैं ऐसा करता रहता हूँ संसार कायम रहना है. इसलिये संन्तों के मत में शब्द का इष्ट बताया गया है. इस शब्द के इष्ट से संसार छूट जाता है क्योंकि संसार की रचना का आदि शब्द है या नाम है. यही बात कबीर ने कही है.
सुर नर मुनि सब छल बल मारिन, चौरासी में डारा हो।।
मद्ध अकास आप जहं बैठे, जोति सबद उजियारा हो।।
वह जो मालिक है वह शब्द और प्रकाश का रूप है. जब तक मनुष्य की सुरत शब्द और प्रकाश को अपना इष्ट नहीं बनाती स्वयं शब्द और प्रकाश नहीं हो जाती, तब तक संसार नहीं छूट सकता. मैं अपने अनुभव के आधार पर कबीर के साथ सहमत हूँ. वह शब्द और प्रकाश एक तो हमारे अन्तर हमारा अपना ही रूप है और एक इस चौदह लोक अर्थात् जितना ऊपर का संसार है सब का आदि वह शब्द और प्रकाश का भंडार है. एक सतलोक हमारा अपना रूप है और एक सतलोक इस संसार के ऊपर ब्रहमांडों से परे हो सकता है. जो जीव प्राण त्यागते समय शब्द और प्रकाश, अपने रूप में

ठहरे हुए होते हैं और संसार का जब त्याग हुआ हुआ होता है तो उनका हर एक तत्त्व अपने-अपने भंडार में मिल जाता है. मिट्टी तत्त्व मिट्टी में मिल गया. जल तत्त्व जल में मिल गया. इसी तरह से संभव हो सकता है कि हमारा अपना शब्द और प्रकाश रूपी आत्मा अथवा जो हम हैं, शरीर के त्याग के बाद उस बड़े भंडार में मिल जाए. चाहता हूँ कि बता सकूं कि शरीर के त्याग के बाद मेरे साथ क्या हुआ. अनुभव मानता है कि उस मालिक का रूप ऐसे ही अनेक सूर्यों का प्रकाश और शब्द की धुन का भंडार है जैसे हमारे अन्तर में तो वायु थोड़ी सी आती है मगर जब वह अन्दर से निकलती है तो बाहर वायु के लोक में मिल जाती है. इसलिए कबीर कहता हैः-

सेत सरूप सबद जहं फूले, हंसा करत बिहारा हो।

कोटिन सूर चन्द छिप जैहैं, एक रोम उजियारा हो।।

जिस तरह यह सृष्टि बड़ी विशाल है, पृथ्वी तत्त्व बड़ा विशाल है, जल तत्त्व बड़ा विशाल है आदि आदि, इसी प्रकार से वह प्रकाश और शब्द, श्वेत प्रकाश और शब्द असीमित, अनन्त (लोक) होगा. अनुभव मानता है कि जिस तरह से हम देह में रहते हुये इस दुनिया में भ्रमण करते हुये आनन्द लेते हैं इसी तरह से जो हमारा शब्द और प्रकाशरूपी आत्मा है जब संसार को त्याग कर स्थायीरूप से शरीर से निकल जाता है तो वह उसी तरह से उस लोक में विहार करेगा जिस तरह से हम इस शरीर को रखते हुये इस दुनिया में विहार करते हैं.

वही पार इक नगर बसतु है, बरसत अमृत धारा हो।

कहे कबीर सुनो धर्मदासा, लखो पुरुष दरबारा हो।।

ज्ञात नहीं वह नगर क्या है. अनुभव से कहता हूँ कि हमारी शब्द और प्रकाश स्वरूपी आत्मा उस सागर में या उस शब्द और प्रकाश के भंडार में रमण करती रहती है. कभी-कभी अनुभव होता है मगर हमेशा नहीं. प्रालब्ध कर्म, शरीर और मन का बन्धन, सत्संग का झमेला और दुनिया के सम्बन्ध नीचे लाते रहते हैं.

मैंने इस प्रकार के ऊँचे सत्संग विलारी से आये हुये कुछ आदमियों को दिये. क्यों? ताकि वे जीवन भर इस फकीरचन्द के साथ न बंधे रहें. गुरु का काम चेतावनी देना, रहस्य बताना है और यही रहस्य सन्त कबीर ने अपने गुरुमुख चेले धर्मदास को दिया है. यह धर्मदास लाखों की सम्पत्ति दान करके कबीर का चेला बना था. संसार तो उसने पहले ही त्याग दिया था. यदि घरबार और धन-सम्पत्ति के त्यागने से ही संसार छूटता तो धर्मदास ने पहले ही छोड़ दिया था. उसको फिर कबीर क्यों कहता भाई संसार छोड़. इसलिये विलारी वालों को कहता हूँ कि संसार भाई-बन्धु और धन-दौलत नहीं है किन्तु संसार वह विचार वह रूप, रंग और रेखायें हैं जो मनुष्य के अन्तर उत्पन्न होती रहती हैं. मैं अपनी पोजीशन को साफ रखने के लिए सच्चाई से काम करता हूँ ताकि जीवों को असलियत का ज्ञान प्राप्त हो. मैं नहीं चाहता कि लोग अज्ञान से मुझे पूजें. यह मत्था टेकना, बाहरी पूजा, धन देना हमारा सांसारिक व्यवहार है. इसके बिना हमारा जीवन निर्मल हो नहीं

सकता. चले चलो. जो समय मिलता है अपने अन्तर ठहरने का साधन करो. सत्संग सुन लिया. बात समझ में आ गयी. रोज़-रोज़ सत्संग में आने की भी आवश्यकता नहीं. साधन करो. अन्तर में ठहरने का यत्न करो. बस.

तुम लोग आये हो. सुनो, भगवान का अन्त नहीं है. जो सच्चे दिल से मांगो वह मिलता है. कुदरत कोई न कोई साधन या ज़रिया उसका बना देती है. जब किसी की इच्छा यहां तक पहुंच जाती है कि वह अपने जीवन (जान) की भी परवाह नहीं करता तब कुदरत उसकी पूर्ति का कोई न कोई सामान पैदा कर देती है. मालिक सब का है. यदि मनुष्य की नीयत सच्ची है तो जब उसको किसी वस्तु की प्रबल इच्छा है तो जिसकी इच्छा है, बशर्ते कि वह इच्छा सच्ची हो, वह पूरी हो जायेगी.

जो कुछ तुम्हें या मुझे मिलता है वह हमारी चाह का फल है. मांगो और मिलेगा. जल्दी मिले या देर से मिले. तुम लोग मेरे पास आये हो, मुझे खुशी नहीं मिलती. मैं नहीं चाहता संसार वालों को फकीर के जाल में फंसाने की कोशिश करूं. गुरु शक्ति है. तुम्हारे पास रहता है. तुम्हारे दिल में रहता है. जीव सहारा चाहता है लेकिन असली बात यह है जो मैंने बताई. जितना जोर लगाना है अन्तर में लगाओ. अन्तर में प्रेम करना सीखो.

'गगन चढ़न, मन वश करन यही बात मुश्किल'. बात करना, व्याख्यान देना, गाना, रोना, हँसना, दान-पुण्य करना तथा शरीर का बलिदान करना भी सुगम है किन्तु सुरत को मन से निकाल कर अकेला कर देना महाकठिन काम है. किसी समय सुरत फंसी तो मन में है, जीव को धोखा होता है कि मैं निकला हुआ हूँ.

मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ वह दया तो दाता दयाल की है मगर आप लोगों से प्राप्त किया. गुरु पदवी पर आने से मेरा काम बन गया. काम तो बन गया किन्तु ठहरा नहीं जाता. आपको सच्ची बात बताता हूँ. जैसे मनानन्द है, कामानन्द है, विवेकानन्द है, आत्मानन्द है इसी तरह 'अनुभवानन्द' भी है. वह अनुभवानन्द निकलने नहीं देता. कबीर ने ये जितनी बातें लिखी हैं वे अनुभवानन्द में आकर लिखी हैं.

सत्संग प्रवचन (मानवता मन्दिर, 6-1-1968)

अगम देश

महरम होय सो जाने, साधो ऐसा देश हमारा।।

वेद कतेब पार नहीं पावत, कहन सुनन से न्यारा।।

जाति वरन कुल किरिया नाहीं, संध्या नैम उचारा।।

बिन जल बूंद परत जहं भारी, नहिं मीठा नहिं खारा।।

सुन्न महल में नौबत बाजै, किंगरी बीन सितारा।।

बिन बादल जहं बिजुरी चमकै, बिन सूरज उजियारा।।

बिना सीप जहं मोती उपजै, बिन सुर शब्द उचारा।।

जोति लजाय ब्रह्म जहं दरसै, आगे अगम अपारा।।

कहै कबीर वहं रहनि हमारी, बूझे गुरु मुख प्यारा।।

आयु बीत गयी उस देश को देखने के लिए. अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि क्या वह देश है या यों ही किसी पन्थ या किसी सन्त के पीछे लगाने को ये पद कहे गये हैं? मैं कहता हूँ कि वह देश है. देश शब्द का अर्थ है एक बहुत बड़ा क्षेत्र. उसमें रचना रहती है, जीव-जन्तु बसते हैं अथवा कहीं जंगल और पहाड़ हैं. हम उस देश को देखते हैं. जैसे भारतवर्ष है, अमरीका है, अफ्रीका आदि देश हैं, ऐसे ही वह भी देश है. इस देश को हम कर्मेन्द्रियों द्वारा देखते हैं. यदि कर्मेन्द्रियां नहीं हैं अर्थात् आंख, कान, हाथ नहीं तो हम इस देश को देख नहीं सकते. जब तक कर्मेन्द्रियां तुम्हारे साथ हैं और तुम इन इन्द्रियों पर बैठे हुए तुम इसी देश को देख सकोगे. उस देश को कैसे देखोगे! जब तक कोई मनुष्य कर्मेन्द्रियों से अलग नहीं होता, तब तक यह जो जाग्रत का देश है इसी को देखेगा. इसलिए कर्मेन्द्रियों को छोड़ना पड़ता है उस देश को देखने के लिए. इस भूमंडल के परे एक सूक्ष्म माया का देश है जहां अग्नि, जल, वायु, मिट्टी और आकाश का स्थूल अस्तित्व नहीं है, केवल सूक्ष्म प्रकृति है. वह देश ज्ञानेद्रियों से देखा जाता है. वह मानसिक रचना का देश है. इसका उदाहरण स्वप्न से दिया जा सकता है. सूक्ष्म रचना समाधि में या स्वप्न में देखते हो अथवा समाधि में दृश्य देखते हो, उस समय कर्मेन्द्रियां काम नहीं करती. केवल ज्ञानेन्द्रियां रहती हैं और उस देश को जिसका वर्णन कबीर साहब ने इस शब्द में किया है उसको न कर्मेन्द्रियों के द्वारा देख सकते हो और न ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा देख सकते हो. वह सुरत (की इन्द्रिय) के साथ देखा जाता है. इन्द्रिय कहते हैं अंग को. सुरत हमारा एक अंग है. ये भिन्न-भिन्न प्रकार की इन्द्रियां हमारे शरीर की या जीवन की अंग हैं. जब तक कोई आदमी पहले कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को नहीं छोड़ता (अर्थात इनका भान-बोध नहीं त्यागता) उस देश को देखना असम्भव है. इसीलिए कबीर ने कहा है--'महरम होय सो जाने'. महरम कहते हैं जानकार को, ज्ञाता को, असलियत की समझ रखने वाले को. इसलिए सन्तों के मार्ग में योग का साधन उस देश में जाने के लिए अनिवार्य बताया गया है. वह योग क्या है? वह है पहले निर्विकल्प समाधि में जाना अथवा दसवें द्वार में पहुंचना. जब शून्य समाधि लगेगी तो कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां काम नहीं करेंगी. शरीर में रहते हुए यहां रहेंगी तो अवश्य मगर काम नहीं करेंगी. तब उस देश को सुरत रूपी इन्द्रिय देख सकती है, या वहां का अनुभव कर सकती है. उस देश में यह रचना वैसे ही है जैसे इस देश की अथवा सूक्ष्म प्रकृति की. फिर यदि कोई उस देश को देखना चाहता है तो उसे साधन

करना होगा. मैं अपने जीवन में कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को साथ रखते हुए उस देश को देखने, जानने तथा सैर करने की कोशिश करता रहा मगर पूरा अनुभव नहीं हुआ था. यह अनुभव अब अधिक होता रहता है क्योंकि मन के अन्दर कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के जो खेल या दृश्य देखा करता था उसमें स्थिरता, या असलियत न होने का पूर्ण विश्वास हो गया. यह विश्वास हो गया कि ये सबके सब कल्पित या मायावी हैं अथवा परिवर्तनशील सिद्ध हुए. वह देश प्रकाश और शब्द का देश है. यहां प्रकाश के ही वृक्ष, प्रकाश के ही रूप तथा प्रकाश ही की रचना है. जिस तरह इस सृष्टि में अग्नि जल, वायु, पृथ्वी और आकाश के रूप हैं जो कर्मेन्द्रियों द्वारा देखे जाते हैं या सूक्ष्म प्रकृति की रचना ज्ञानेन्द्रियों से देखी जाती है, इसी प्रकार वह प्रकाश और शब्द का देश है. प्रकाश ही प्रकाश है. प्रकाश ही का सब पसारा है. वह सुरत से ही देखा जाता है. वहां कबीर कहते हैं-

बिन जल बूंद परत जहां भारी, नहिं मीठा नहिं खारा।।
सुन्न महल में नौबत बाजे, कंगरी बीन सितारा।।

वहां प्रकाश ही प्रकाश है. प्रकाश की गति या कम्पन का नाम है शब्द. जिस प्रकार स्थूल जगत में स्थूल प्रकृति के गति करने से शब्द का होना लाजिमी है इसी तरह सूक्ष्म रचना में जहां विचार का खेल होता है वहां भी विचार की गति से शब्द उत्पन्न होता है और वह जो प्रकाश का देश है वहां प्रकाश की गति से या कम्पन से शब्द होता है. जैसा यह देश है वैसा ही सूक्ष्म प्रकृति का देश है, वैसे ही प्रकाश का देश या लोक है. यहां भी शब्द है और वहां भी शब्द है. केवल शब्द-शब्द में अन्तर है. यहां नदी बहती है उसमें दूसरी तरह की आवाज़ है. पक्षी और पशु बोलते हैं उनकी आवाज दूसरी ही तरह की है. डाक्टर हृदय पर, शरीर पर स्टेथोस्कोप लगाते हैं, वहां और तरह की आवाज है. अतः शब्द तो सब जगह है मगर सन्तों ने जो अन्तर में शब्द सुने उनकी अपने-अपने शब्द गढ़ कर दुनिया के बाजों की आवाजों से उपमा या समानता देते हुए उनके नाम रखे. सितार, सारंगी, मुरली की आवाजें क्या हैं? उस लोक की जो प्रकाश है और उसमें जो कम्पन होता है, उसकी आवाजें है और दुनिया की वस्तुओं की आवाजों की उपमा देकर समझाने का एक ढंग है.

बिन बादल जहं बिजली चमके, बिन सूरज उजियारा।
बिना सीप जहं मोती उपजै, बिन सुर शब्द उचारा।।

यहां बादल होते हैं तो बादलों से बिजली चमकती है, वहां बिजली बादलों से नहीं निकलती क्योंकि बादलों का सम्बन्ध स्थूल माद्दे से है. वहां प्रकाश रूपी देश में जो चमक रहती है वह बिजली की चमक का इशारा है. यहां आवाज किसी बाजे से पैदा की जाती है, वहां प्रकाश रूपी जो माद्दा है उसमें से स्वयं आवाजें होती रहती हैं. सीप के बिना मोती! मोती तुम्हारी सुरत है. शरीर में रहती हुई वह मानव शरीर में बन्द हैं. वहां सीप की आवश्यकता नहीं. अर्थात् देह और मन की

आवश्यकता नहीं. स्वयं वह नंगी होकर रहती है. सुरत जो है वह बिना सीप अर्थात् देह और मन के खोल के बिना मौजूद है.

जोति लजाय ब्रह्म जहं दरसै, आगे अगम अपारा।

कहें कबीर वहां रहन ही ऐसी, बूझै गुरु मुख प्यारा।।

जोति लजाय से अभिप्राय ज्योति स्वरूप के दर्शन से है. वह प्रकाश सहसदल कंवल में है. वह भी प्रकाश ही है मगर वह प्रकाश मन के संकल्पों के कारण होता है. इसका अर्थ यह है कि वह प्रकाश ज्योति जैसा नहीं होता. केवल सीप के रंग का होता है और उस सीप के रंग के प्रकाश का नाम है - जहां ब्रह्म है वह "ब्रह्म दरसै'. श्वेत रंग का देखना ही ब्रह्ममय होना है. ब्रह्म को देखना है. जब ये श्रेणियां तै हो जाती हैं और उस देश की सुरत बहुत सैर कर लेती है फिर उसको ज्ञान हो जाता है कि वह मालिक क्या है, मैं कौन हूँ. इस ज्ञान का नाम है अगम देश. बिना योग-साधन के यह ज्ञान या अनुभव नहीं हो सकता. वह योग है-

तन थिर मन थिर, सुरत निरत थिर होय।

कहें कबीर वा पलक को, बिरला पावे कोय।।

फिर उस देश की सैर करने के लिये क्या तरीका है. तन थिर अर्थात् कर्मेन्द्रियों को छोड़ो. मन थिर ज्ञानेन्द्रियों को छोड़ो. फिर वह जो प्रकाश रूपी देश है, ब्रह्म का देश है, इस से आगे जाओ. तब ज्ञान होगा इस अगम देश का. इसकी प्राप्ति का उपाय यह है कि अजपा जाप के करने से अर्थात् जिभ्या बिना हिलाये हुये मस्तिष्क में अजपा जाप करने से कर्मेन्द्रियों का खेल समाप्त होगा. इसको तीन बन्द कहते हैं.

चश्म बन्दो गोश बन्दो लब बन्द।

गर न बीनी सिर्रे हक़ बर पा न खंद।।

(अर्थात् आंख, जीभ और कान को बन्द करो. फिर हक़ की प्राप्ति न हो तो मुझ पर हँसो.)

यह सुमिरन है. जो इस उद्देश्य को लेकर सुमिरन नहीं करते हैं, उनको लाभ नहीं होता. हर काम का उद्देश्य होता है. जब कर्मेन्द्रियों का भान-बोध समाप्त हो गया फिर ज्ञानेन्द्रियां--मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार का बोध समाप्त होगा ध्यान योग से. (मैं नहीं कहता कि तुम किसका ध्यान करो) हमारे मार्ग में गुरु स्वरूप का ध्यान करते हैं. कोई ध्यान करो. जिसका ध्यान करते हो उसको पूर्ण मानो. जब ध्यान की अवस्था गहरी हो जायगी, निर्विकल्प समाधि लग जायगी. ज्ञानेन्द्रियों के सूक्ष्म देश की जो स्पप्न में या समाधि में सैर करते हो, यह बन्द हो जायगी.

फिर सुरत का खेल है प्रकाश और शब्द. वह भी एक लोक है. जब यह साधन पूरा हो जाएगा, फिर तुमको ज्ञान हो जाएगा कि असलियत क्या है. वह तुम आप ही आप हो.

जो दीखे सो है नाहीं, जो है वह कहा न जाई।

सैना बैना जो कोई बूझै, गूंगे का गुड़ खाई।।

इस निज रूप का ज्ञान उसी समय होगा जब तुम साधन करोगे. जब ज्ञान होगा तो वह अनिर्वचनीय है. 'जो दीखै सो नाहीं', इस दुनिया में जो कुछ तुम जाग्रत में देखते हो, वह भी नहीं, मन की रचना में जो देखा वह भी नहीं, जो प्रकाश लोक की सैर की वह भी नहीं. फिर वह क्या है? भिन्न-भिन्न शब्द गढ़ कर उसे प्रगट किया जाता है किन्तु ये सब अधूरे हैं.

यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार।।

इस लोकों के बारे में मैंने तीन लोकों का वर्णन कर दिया अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण. इनका जो आधार है, जो वस्तु इन तीनों लोकों में खेलती है वह तुम हो. अब इस 'तुम को' तुम 'मैं' कह लो, सुरत कह लो, निज स्वरूप कह लो. इसका अनुभव मुझे इसी जीवन में हुआ. शरीर के स्थायी त्याग के बाद क्या होगा, कुछ नहीं कह सकता.

उतते कोई न आइया, जा से पूछूं जाय।
इतते सब कोई जात है, भार लदाय लदाय।।

यह जितना अनुभव हुआ इसी जीवन में हुआ, चूंकि मरने के बाद किसी ने आकर नहीं बताया. अतः साहस नहीं होता कि कुछ कहूं. इच्छा है कि मौज तौफीक़ दे कि बता सकूं कि शरीर के स्थाई त्याग के बाद मेरे साथ क्या बीतेगी. इस समय तक इस निश्चय पर पहुंचा हूँ कि जीवन मालिक की मौज का एक चमत्कार है. कभी सोचता हूँ कि वह आप ही सुरत रूप है. आप ही आकर इस रचना में खेलता है और खेल देखने के लिये आता है. फिर वह मालिक क्या निकला? चुप, खामोशी और अचरज. हम तुम उस अनन्त खामोशी या मौनता के समुद्र से प्रगट हुए सैर करते हैं. जब उसकी इच्छा होगी वह लय कर लेगा. गुरु गोविन्दसिंह जिनका आज जन्म दिन है यही कह गये-

मैं हूँ परम पुरुष का दासा।
जग में आया देखन तमाशा।।

कोई इस स्थूल जगत का तमाशा देखने के लिये आया. काम कर गया पांच कर्मेन्द्रियों द्वारा, जिससे अपना भी और दूसरों का भी भला हुआ. कोई आया ज्ञानेन्द्रियों की सैर कर गया. मीठा बोल गया, प्रेम कर गया, अच्छे विचार दे गया, एकता और प्रेम का खेल खेल गया. कोई सन्त आया जो आप ब्रह्ममय हो गया. कबीर की तरह प्रकाश के खेल में खेला. दूसरों को उस देश का पता दे गया. इस समय तक मेरी यह अवस्था है. मैंने इन तीनों प्रकार के खेलों को खेला है. शरीर से किसी का भला हो सके वह करने की कोशिश की. मैंने किसी से प्रेम किया, अच्छे विचार दिये, किसी को उत्साहित किया. आत्मा में या प्रकाश में रहता हुआ स्वयं आनन्द लिया और दूसरों को देने की कोशिश की. जीवन मुक्त की अवस्था में जहां ठहरा, वहीं आनन्द ले लिया. काम करते समय काम में, प्रकाश या शब्द में, जहां भी ठहरा, वहीं आनन्द

लिया.

नोट:-मास्टर मोहनलाल ने प्रश्न किया कि आपने कहा कि प्रकाश से शब्द पैदा होता है. प्रकाश के देश में जो शब्द होता है वह प्रकाश की गति से होता है. सन्त कहते हैं शब्द से रचना होती है. इसे स्पष्ट करिये.

उत्तर :-जो शब्द स्थूल प्रकृति, सूक्ष्म प्रकृति या प्रकाशमयी कारण प्रकृति के हैं प्रकाश की गति से होते हैं. वह जो आदि शब्द है वह न तो घंटा-शंख का शब्द है, न ओंग है, न रारंग है न सारंग है, न मुरली है न बीन है. वह आदि शब्द है. राधास्वामी मत वालों ने उसका राधास्वामी नाम बताया. किसी ने उसको 'राम' का शब्द कहा. मगर उसका कोई रूप नहीं, कोई उसकी लय नहीं, तान नहीं. उसको कहते हैं सारशब्द. शेष जितने शब्द हैं इनका आधार वह शब्द है. जिस प्रकार की प्रकृति जिस देश की है उसके अनुसार शब्द होते हैं इसीलिये सन्तों ने कहा है-- सार शब्द का निरवारा. और वह सारशब्द असली नाम है. वह निज स्वरूप है.

प्रवचन
(मानवता मन्दिर होशियारपुर 15-1-68)

कबीर शब्द की व्याख्या

शब्द

हम ऐसा देखा सतगुरु संत सिपाही।।
संत नाम को पटा लिखायौ, सतगुरु आज्ञा पाई।
चौरासी के दुक्ख मिटे, अनुभौ जागीरी पाई।।
सुरत सींगरा[1] सांग[2] समुझ को, तन की तुपक बनाई।
दम को दारू सहज को सीसा, ज्ञान के गज ठहकाई।।
सील संतोष प्रेम की पथरी, चित चमकत चमकाई।
जोग को जामा बुद्धि मुद्रिका, प्रीति पियाला पाई।।
सत कै सेल्ह जुगत कै जमधर, छिमा ढाल ठनकाई।
मोह मोरचा पहले मार्‌यौ, दुविधा मार हटाई।।
सत्त नाम कै लगा पलीता, हर हर होत हवाई।

गम गोला गढ़ भीतर मार्यौ, भरम के बुर्ज ढहाई।।
सुरत निरत कै घेरा दीन्हों, बन्द कियौ दरवाजा।
सबद सूरमा भीतर पैठा, पकरि लियौ मन राजा।।
पांचों पकरे कामदार जो, पकरी ममता माई।
दास कबीर चढ़यौ गढ़ ऊपर, अभय निशान बजाई।।

(1.सींगरा= सींग की तरह बारूद रखने का
2. सांग= बरछा)

यह शब्द सत्संग में पढ़ा गया. ख्याल आया कि कबीर ने यह क्या लिखा है. जो कुछ लिखा है क्या वह ठीक है? दुनिया कहेगी कि यह कैसा मूर्ख फकीर है जो सवाल करता है कि क्या कबीर का लिखा हुआ ठीक है. मैं क्या करूं! दाता ने कहा था फकीर!
जब लग देखो न अपने नैना।
कभी न मानो गुरु के बैना।।
मुझे संस्कार ही ऐसा मिला है. जब तक किसी वस्तु को स्वयं देख नहीं लिया, पहचाना नहीं, जाना नहीं, मैंने उसे नहीं माना. कबीर ने जो कुछ लिखा है उसे मैंने जान लिया, मान लिया, पहचान लिया कि ठीक है. अब उसका प्रमाण देता हूँ कि कैसे ठीक है.
मैंने गुरु आज्ञा का पालन किया. इस आज्ञापालन से सत्नाम का पटा लिखा गया अर्थात् मुझको विश्वास हो गया कि सिवाय नाम के और जो कुछ भी है वह सब कल्पित है, माया है, प्रकृति है. यह विश्वास कराने वाले सत्संगी हैं. गुरु आज्ञा क्या थी. यही कि सत्संग कराना और नाम दान देना. इसके अतिरिक्त और भी आज्ञा की -- जैसे हक़ हलाल की कमाई करना, प्रेम को दिल देना, ईर्ष्या, द्वेष मत्सर, घृणा को त्यागना. केवल इस ख्याल से कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता और मेरा रूप अन्तर प्रगट होकर सुरत चढ़ाता, मरते समय साथ ले जाता, अथवा अन्य काम करता है, तो यह सिद्ध हो गया कि मेरे अन्तर में जितने भाव-विचार, रूप-रंग तथा दृश्य पैदा होते थे वे मायावी हैं अथवा मन के बनाये हुए हैं. हैं नहीं मगर अन्तर में भासते हैं, बाहर में नहीं. बाहर की दुनिया तो प्रगट है. सूर्य भी है, तुम लोग भी बैठे हुए हो मगर जब तुम्हारा कल्पित रूप मेरे अन्तर आता है तो तुम नहीं होते. तो माया क्या हुई? यही कि जो रूप-रंग-दृश्य चाहे वह तुम्हारे या दाता दयाल या स्वामी जी महाराज के अन्तर में प्रगट हुए वे कल्पित थे. वह ही माया थी. बाहर के स्वामी जी या बाहर के दाता दयाल के रूप तो सत्य हैं मगर अन्तर के नहीं. बाहरी दुनिया है तो माया मगर यह भगवान की माया है, इस विश्वास ने सत्नाम का पटा लिख दिया. पटा कहते हैं किस बात के पूर्ण निश्चय होने को. फिर इस पटे के पूर्ण निश्चय का परिणाम

यह हुआ कि मेरी सुरत जो अपने मन की कल्पनाओं, भावों और विचारों को सत्य मान कर फंसती रहती थी, उसमें फंसती नहीं. जो कुछ मेरे अन्तर फुरना होती है मैं उसको सत्य नहीं मानता मगर शरीर के स्थाई त्याग के बाद क्या होगा, इसका पता नहीं. इस समय तक तो यह विश्वास है कि अन्तर के दृश्य जो कुछ उठते हैं वे हैं नहीं. जब मेरी सुरत इनका अस्तित्व मानती ही नहीं तो फंसती भी नहीं, तो फिर 84 का चक्र मुझे कैसे आयेगा अर्थात् नहीं आयेगा. मुझे तो यह ज्ञान हुआ है. इसका नाम है अनुभव!

हम ऐसा देखा संत सिपाही।

वह सन्त सिपाही मैं हूँ या वे हैं जो मेरे जैसा अनुभव रखते हैं. दुनिया ने सन्त सिपाही को यह समझा हुआ है कि वह सन्त हो कर तलवार उठाता है. यह अज्ञान है. वह इस माया के जाल का सन्त सिपाही है.

सत्त नाम का पटा लिखाये, सतगुरु आज्ञा पाई।

चौरासी के दुक्ख मिटे, अनुभव जागीरी पाई।।

कोई ख्याल मन में आया तो चिन्ता पैदा हुई या खुशी हुई. जब यह ज्ञान हो चुका है कि मेरे हर प्रकार के विचार या ख्याल मायावी अर्थात् कल्पना मात्र हैं तो फिर सुरत कहां ठहरेगी? वह ठहरेगी नाम में. नाम है शब्द जो मेरे अपने ही आपका प्राण है, मेरा ही सांस है. मेरी ही आत्मा है. जो नाम मैं सुनता हूँ वह मेरा ही तो है, वह विचार, भाव, रूप, दृश्य यह भी तो मुझसे ही निकलते थे. मेरे ही आधार पर नाम है. मेरा ही नहीं प्रत्येक मनुष्य का आधार नाम है. इस अनुभव के आधार पर वे जो संकल्प-विकल्प, अच्छे या बुरे, जो दुख-सुख का कारण बनते थे, वे समाप्त हो गये.

सुरत सींगरा सांग समुझ को, तन की तुपक बनाई।

दम को दारू सहज को सीसा, ज्ञान के गज ठहकाई।।

कबीर ने युद्ध के शस्त्रों का सहारा लेकर बात कही है कि शरीर में रहते हुये अपनी तवज्जह से, इस अनुभव ज्ञान के गोले के साथ मन के अहसासात तथा भावों को, जो दुख-सुख का कारण बनते थे, शरीर में रहते हुए समाप्त कर दिये.

सील सन्तोष प्रेम की पथरी, चित चकमक चमकाई।

जोग को जामा बुद्धि मुद्रिका, प्रीति पियाला पाई।।

जब मनुष्य इस अनुभव में आता है तो शील, संतोष, प्रेम स्वयं पैदा हो जाते हैं. मेरे अनुभव में इस ज्ञान और अनुभव के बिना सन्तोष आदि स्थायी रूप से नहीं रह सकते, क्योंकि जब मनुष्य मन के संकल्प-विकल्पों को सत्य मान रहा है तो उसमें सन्तोष और शान्ति स्थायी रूप से नहीं आ सकती. यदि कोई चाहे भी तो उस दशा पर ठहर नहीं सकता. तुमने शीलवान व सन्तोषी रहने की कोशिश की परन्तु किसी ने कोई बात अनुचित कह दी और तुम्हारे अन्तर उसकी प्रतिक्रिया हुई तो

शील भी गया और सन्तोष भी गया. मगर जब यह अनुभव-ज्ञान होगा कि जो मेरे अन्तर पैदा होता है यह तो माया है कल्पना है (अनुभव माया नहीं है किन्तु ज्ञान माया है). तो जो ज्ञान पैदा होता है वह तो माया है मगर कारण माया है. अनुभव अत्यन्त सूक्ष्म है. अनुभव से शील और सन्तोष स्थिर रहते हैं, मेरा जीवन इसी खब्त में बीता. बहुत कुछ सन्तोष तथा शान्ति को धारण किया मगर गिरता रहा. गिरावट यदि नहीं आई तो केवल इस अनुभव से नहीं आई कि यह सब माया है. अब भी जब कभी इस अनुभव को भूल जाता हूँ तो इस संसार का व्यवहार करते हुए मेरी दशा कभी-कभी गिर जाती है चाहे वह क्षण मात्र को ही हो. चूंकि नित्यप्रति साधन व विचार करता हूँ, सत्संग करता हूँ तुरन्त संभल जाता हूँ.

सत के सेल्ह जुगत कै जमधर, छिमा ढाल ठनकाई।

मोह मोरचना पहिले मारौ, दुविधा मारि हटाई।।

यदि यह ज्ञान हो भी जाय, तो इसको परिपक्व करने के लिए साधन और सत्संग करते रहना चाहिए. दाता दयाल महर्षि शिव ने जब यह काम दिया था तो कहा था कि सत्संग कराने से तेरा कल्याण होगा. यह जो मैं सत्संग कराता हूँ, प्रतिदिन वाणियां सुनता हूँ, किसी पर अहसान नहीं करता. मेरा अपना लाभ होता है. प्रतिदिन का साधन सहायता करता है इसलिए साधन और सत्संग जीवन के अंग होने चाहिएं.

सत्तनाम कै लगा पलीता, हरहर होत हवाई।

गम गोला गढ़ भीतर मारयो, भ्रम के बुर्ज ढहाई।।

'हर हर होत हवाई' से कबीर का क्या अभिप्राय है मैं नहीं जानता. मैं जो समझता हूँ वह कहता हूँ. जितने आदमी अपने मन से उस हरि, भगवान या परमेश्वर को पूजते हैं, उनको जब सत्नाम का ज्ञान हो जाता है तो यह पूजा समाप्त हो जाती है. यह जो हरि की पूजा है अथवा किसी की पूजा है यह हवाई हो जाती है अर्थात् समाप्त हो जाती है. क्यों? क्योंकि यह समस्त पूजा मनुष्य का अपना संकल्प या अपना विचार है. अपने अन्तर में वह सब का सब माया है, कल्पित है अथवा माना हुआ है. बाकी केवल शब्द रह जाता है जिसको हिन्दू शास्त्र शब्दब्रह्म कहते हैं. शब्दब्रह्म सनातन धर्म में सबसे ऊँचा है. चूंकि सनातन धर्म समुद्र है, कोई किसी जगह है कोई किसी जगह है. सनातन धर्म में माया भी है, ब्रह्म भी है, पारब्रह्म भी है, शब्दब्रह्म है, और शब्दब्रह्म से आगे परमतत्त्व है. श्रेणियां हैं. जो एम.ए. में पढ़ता है उसकी दृष्टि में छोटी क्लासें कुछ अर्थ नहीं रखतीं और वह उनकी ओर ध्यान नहीं देता. मैं खंडन नहीं करता किन्तु यथार्थ बात कहता हूँ.

सुरत निरत कै घेरा दीन्हों, बन्द कियो दरवाजा।

सबद सूरमा भीतर बैठा, पकरि लियो मन राजा।।

आज कल भी घेरा डालते हैं. घेराव में यह होता है कि बाहर के लोगों को अन्दर नहीं आने देते और

अन्दर के लोगों को बाहर नहीं जाने देते. तो जब सुरत अन्तर में निरत करती है (अर्थात ठहर जाती है) तो हमारा आपा (शब्द रूपी सुरत) जब अपने अन्तर में ठहर कर निरत करता है तो बाहर के विचार, रूप-रंग न उसके पास आते हैं और न वे बाहर आते हैं. घेरा डालने का यही अभिप्राय है.
पांचों पकरे कामदार जो, पकरी ममता माई।
दास कबीरा चढ्यो गढ़ ऊपर, अभय निसान बजाई।।
वह जो हमारा आप है, निज स्वरूप है वही कबीर है. हर एक आदमी का जो निज स्वरूप है वही कबीर है.
जब यह अवस्था आ जाती है फिर मन के भाव, विचार, आदि कोई तंग नहीं करते. काबू में आ जाते हैं, जीवन में यदि दो-चार बार यह साधन हो जाये अर्थात् सुरत निरत होकर शब्द में ठहर जाये तो फिर उसको ज्ञान हो जाता है. सुरत को अकेले होने का साधन मिल जाता है. फिर जिस तरह उसका शरीर काम करता रहता है, व्यवहार और प्रतिभास में बरतता रहता है वह उसके दुख-सुख से विचलित नहीं होता क्योंकि अपने रूप का ज्ञान हो जाता है. भ्रम-संशय--- ईश्वर-परमेश्वर क्या है, मुक्ति क्या है, संसार क्या है? चले जाते हैं. भ्रम के जो गढ़ हैं अर्थात् हमारे अन्तर में जो प्रश्नोत्तर उठते रहते हैं ये टूट जाते हैं. जीवनमुक्त अवस्था या विदेह गति आ जाती है.
यह आत्मज्ञान है अथवा उपनिषदों का ज्ञान है.

सत्संग प्रवचन
(मानवता मन्दिर 1-8-1967)

संसार

सब जग रोगिया हो, जिन सतगुरु वैद न खोजा।
सीखा सीखी गुरु मुख हुआ, किया न तत्त विचारा।
गुरु चेला दोउन के सिर पै, जम मारे पैजारा।
झूठे गुरु को सब कोई पूजै, साचै न पतियाई।
अंधे बांह गही अंधे की, मारग कौन दिखाई।
इस शब्द में कबीर का क्या भाव है मैं नहीं जानता. जो मैंने समझा वह कहता हूँ. रोग कहते हैं शरीर में किसी तत्त्व का कम हो जाना या किसी तत्त्व का बढ़ जाना. यह शारीरिक रोग है जिससे शरीर रोगी हो जाता है. कफ़ बढ़ गया, पित्त बढ़ गया अथवा वायु प्रबल हो गयी आदि-आदि.
मन का रोग--किसी वस्तु की चाह का पैदा होना और किसी चाह या वासना को दूर करने की इच्छा

पैदा होना. यह मानसिक रोग है. मैं इस मानसिक रोग को सोग या शोक भी कह सकता हूँ. एक आत्मिक रोग होता है. आत्मा प्रकाश स्वरूप है. प्रकाश का बढ़ना और घटना. यह तीनों अवस्थाओं में घटा-बढ़ी के साथ अशान्ति, चिन्ता, शोक, अज्ञान, भ्रम रहता है. इसका नाम --'रोग'-- मेरी समझ में आया है. इसका इलाज जो करता है उसका नाम सत्गुरु है.

सीखा सीखी गुरुमुख हुआ, किया न तत्त विचारा।
गुरु चेला दोउन के सिर पै, जम मारै पैजारा।।

कबीर ने निर्भय हो कर वाणी कही है. सारी दुनिया गुरु धारण करती है. गुरु पूजा लेते हैं, मान लेते हैं. चेले सेवा करते हैं और वे समझते हैं हमने गुरु को धारण कर लिया. मैं सोचता हूँ कि फिर गुरु क्या है. गुरु है सार-भेद, सार-ज्ञान, सार-अनुभव कि मनुष्य क्या है. जिस समय यह ज्ञान हो जाता है रोग-सोग और अज्ञान की चिन्ता नहीं रहती. घबराहट नहीं रहती, अशान्ति नहीं रहती. यह है तत्त्व विचार. जो तत्त्व विचार मुझको प्राप्त हुआ. मैं वह कहता हूँ. तत्त्व विचार से कबीर का क्या भाव रहा होगा मैं नहीं जानता. साधन, अभ्यास और सत्संग से यह विश्वास हुआ कि तत्त्व एक है. उसमें क्षोभ होती है. उसमें से शब्द और प्रकाश पैदा होता है. शब्द के पैदा होने से एक चेतना पैदा होती है. शायद आप न समझ सकें क्योंकि यह साधन का विषय है मगर यह तो समझ सकते हैं कि जब गहरी नींद में आप बिल्कुल बेहोश होते हैं और फिर उत्थान होता है तब थोड़ा सा होश आने से पहले एक प्रकार की चेतना होती है. यह तो शारीरिक अवस्था है. इसी प्रकार इस मार्ग पर चलने पर जब शारीरिक, मानसिक और आत्मिक चेतनाएं समाप्त होकर लय की अवस्था आती है, उस समय सब कुछ भूल जाने की अवस्था होती है. जब चेतनता आती है तो इस चेतनता में शब्द होता है. शब्द के होने से हमारे आपे को होश आता है या चेतनता आती है. या यों समझ लो कि जब अशब्द गति थी तो बेहोशी थी. जब शब्द हुआ तो तुम्हारी सुरत पैदा हुई. सुरत से आदि चेतनता या पहली चेतनता हुई. फिर वह चेतनता उसी तरह फुरती है जिस तरह गहरी नींद से उठने के बाद वह बढ़ी ठीक जाग्रत में वह खेल खेलती है. यदि मनुष्य इस अवस्था पर काबू रखे और विचार करे तो इस गहरी नींद से ठीक पूरी जाग्रत की जो अवस्था है उसमें जितने दर्जे या श्रेणियां अपनी बुद्धि से बनाना चाहे बनाकर उनका वर्णन कर सकता है. इसी प्रकार वह जो आदि चेतनता या सुरत शुरू में पैदा हुई उस सुरत में अनेक प्रकार की चेतनाएं--जैसे आत्मपना, मानसिक चेतनाएं और शारीरिक चेतनताएं पैदा होती हैं. इन चेतनताओं के विभिन्न नाम सन्तों ने गढ़े हैं. इनका पहला नाम है अगम अर्थात सुरत के 'है-पने' के प्रगट होने की पहली अवस्था, दूसरी अलख और तीसरी सत्. यह हमारी अपनी आदि सुरत की जाग्रत (सत्) स्वप्न (अलख) गहरी नींद (अगम) यह तीन अवस्थाएं हैं. इससे फिर आगे भंवर गुफा, महाशून्य, शून्य और त्रिकुटी हैं. ये क्या हैं? यह सुरत के साथ विचार-ज्ञान पैदा होता है उसकी तीन अवस्थाएं हैं. मन की गहरी नींद जो अगम का प्रतिबिम्ब है. यह सोहंग गति है. शून्य-महाशून्य, स्वप्नावस्था है. त्रिकुटी मन की

जाग्रत अवस्था है. ऐसे ही सहस्रदल कंवल या ये सब जो निचली श्रेणियां हैं ये हमारी सुरत, आत्मा या मन के खेल हैं. यह खेल प्रकृति के कारण स्वाभाविक होते हैं. चूंकि हमें इनके स्वाभाविक होने का निश्चय नहीं होता, हम इन खेलों में अपने अज्ञान से दुख-सुख उठाते हैं और उन खेलों से जो दुख होता है उससे बचने का प्रयत्न करते हैं अथवा उसमें आनन्द लेने का प्रयत्न करते हैं. स्वामी जी का शब्द है :-

जग जाग्रत भौ दुख मूल। सुपना भी दुख सुख मूल।।
सुषुप्ति कुछ घर आराम। वह भी नहीं ठहरन धाम।।
तानों में फिरत आठों जाम। पूरा नहीं कहीं बिसराम।।

ये श्रेणियां शरीर की हैं.

अब करिये कौन उपाय। कासे अब पूछूं जाय।
तड़पूं और तरसूं निस दिन। बिरह अगनि जलूं मैं दिन दिन।।
कोई राह न सुख की गावे। सब करम भरम भरमावे ।।
निज भेद कहे नहीं कोई। बिरथा नर देही खोई।।
यह सोच करूं मैं भारी। तब सतगुरु कीन संभारी।।

सत्गुरु क्या करता है? इन जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में जो हर एक जीव चक्कर लगाता रहता है उससे बचने का उपाय बताता है.

कर दया भेद बतलाया। तुरिया फिर मारग गाया।।
तुरिया के आगे बरना। फिर उससे आगे चलना।।
तिस से भी परे लखाया। उसके भी पार सुनाया।।
तिस पर यह और समझाया। कुछ आगे और बुझाया।।
वहां से पुनि आगे भाखा। निज धाम मुख्य यह राखा।।

ये नौ (श्रेणियां) है. नौ श्रेणियां-- जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे उन्होंने अनुभव से वर्णन की हैं. ये नौ श्रेणियां क्या हैं? मन की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, फिर आत्मा की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति फिर सुरत की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति. वह जो अन्तिम श्रेणी है वह क्या है? वह वह श्रेणी या अवस्था है जहां न मन रहता है न आत्मा न सुरत. अनामी पद, ज़ात, अकाल पुरुष. यह ज्ञान साधन करने से हो जाता है. मुझे दूसरों का पता नहीं. जो मुझे हुआ वह यह है कि मैं एक चैतन्य का बुलबुला हूँ जो मौज के क्षोभ में प्रगट होता है और उसी में समा जाता है. मेरा प्रगट होना और समा जाना उस मालिक परमतत्त्व आधार के अधीन है और यह जो कुछ हो रहा है स्वाभाविक है. होना ही ऐसा है. इस अनुभव ज्ञान से यह हुआ कि जो रोग-सोग (शोक) या अज्ञान पैदा होता

था और मेरी सुरत को अशान्त रखता था, वह समाप्त हो गया. तो गुरु क्या देता है? साधन और अभ्यास से यह गति मनुष्य के अन्तर पैदा कर देता है तो इस अनुभव ज्ञान के होने से यह लाभ हुआ कि जो चिन्ता थी कि हम को शान्ति मिले, जिसके लिये हम गुरु धारण करते थे, वह उद्देश्य पूरा हो गया. कबीर कहते हैं:-

सीखा सीखी गुरु मुख हूआ, किया न तत्त विचारा।
गुरु चेला दोनों के सिर पर, जम मारे पैजारा।।

कबीर कहते हैं कि जो शिष्य गुरु धारण करके इस ज्ञान को प्राप्त नहीं करता अर्थात् तत्त्व को नहीं विचारता तथा वह पुरुष जो गुरु बन कर यह शिक्षा नहीं देता, तो दोनों के सिर पर जम जूते मारता है. अभिप्राय यह कि न शिष्य को शान्ति मिलती है और न गुरु को. दोनों ही अपने मन की कल्पनाओं में या मन के ग़लत विचारों में आकर कोई तप में, कोई जप में, कोई ईमानदारी में, कोई धर्म-कर्म में और कोई किसी बात में उलझा रहता है.

झूठे गुरु को सब कोई पूजे, सांचे न पतियाई।
अंधे बांह गही अंधे की, मारग कौन दिखाई।।

जितने और उपाय हैं चाहे कोई भी हों, मनुष्य का अज्ञान और अशान्ति दूर नहीं कर सकते. क्यों? उसका उत्तर सुनिये. जितने साधु और महात्मा लोग हैं क्या शरीर के रोगी नहीं हुये या नहीं होंगे? अवश्य हुए और होंगे. सब संत बीमार हुए. क्या उनके घरों में मृत्यु नहीं हुई? यह तो प्रत्यक्ष हम सन्तों में देखते हैं. उनके मन की क्या दशा होती है यह तो वही महात्मा जानते होंगे. मैं अपना हाल जानता हूँ. मन तरह-तरह के नाच नचाता है. 'मानवता मन्दिर' की उन्नति की इच्छा मौजूद है. यह भी इच्छा रहती है कि जो दुखी लोग आते हैं वे सुखी हो जाएं. अस्पताल खोला हुआ है. अपनी आवश्यकता पर दूसरों से सहायता लेता हूँ और यथाशक्ति दूसरों की सहायता करता हूँ. यह जीवन है. इसमें दुख-सुख, भलाई-बुराई, जीवन-मृत्यु, मान-अपमान कभी मिट नहीं सकते. सन्तों तक को भी यही हुआ. नामदेव को गाय के चमड़े में बांध दिया गया. गुरु नानक से चक्की पिसाई गई. कबीर के साथ भी दुर्व्यवहार हुआ. इसलिये असली गुरुमत है अपने रूप का ज्ञान. मुझे क्या ज्ञान मिला? यही कि मेरी सुरत उस मालिक, ज़ात या परम तत्त्व के हिलोर से बनती है. यह कर्तापुरुष का खेल है. जब जैसी प्रकृति जिस जीव की बनी है वैसा खेल तो होगा ही. केवल इस अनुभव से कि ऐसा ही होता है, मनुष्य को शान्ति रहती है क्योंकि उसका इष्ट वह अकाल पुरुष है या आधार है. हो सकता है कि शरीर के त्याग के बाद हमारी सुरत सदा के लिये उसमें लय हो जाय. दुनिया जैसी है वैसी ही रहेगी. अपना खेल खेला और निज स्वरूप में विलय हो गये.

जो होना है वह होकर रहना है. समझ और ज्ञान के बिना शान्ति नहीं मिलती. यह सारा संसार तो एक खेल है. खेल को खेलो. हाय-हाय करने से बच नहीं सकते. चिन्ता-फ़िक्र नहीं करनी

चाहिये. यही गुरुमत है. यहां कौन पति, कौन स्त्री! कौन बाप, कौन बेटा! कौन गुरु, कौन चेला! भ्रम है. यह संसार माया रूपी है. जब ज्ञान हो जाता है तबः-

जैसे जल में केवल निरालम्ब, मुरग़ाबी निशानये।

सुरत शब्द भव सागर तरिये, नानक नाम बखानिये।।

क्योंकि मन चंचल है इसलिये इसकी चंचलता को दूर करने के लिये यह सुमिरन, ध्यान और भजन है. यह सुमिरन-ध्यान-भजन इष्ट पद नहीं है. यह साधन मात्र है. सबसे बढ़ कर सत्संग है. सत्संग से समझ-बूझ आती है. विवेक आता है. और साधन से जो कुछ सत्संग में वचन कहे जाते हैं उनका अपने अनुभव के आधार पर दृढ़ निश्चय हो जाता है.

ये श्रेणियां कुछ नहीं हैं. केवल ठहर-ठहर कर चलने के अनुभव हैं. जो ठहरने वाले हैं वे इन श्रेणियों का ज्ञान ले लेते हैं. इनसे गुजर तो सब ही जाते हैं मगर पता नहीं होता कि हम गुजर गये. प्रत्येक आदमी इन श्रेणियों से गुजरता है और इष्ट पद पर पहुंच जाता है. इसलिये राधास्वामी दयाल ने लिखा है कि संत जीवों को बन्द गाड़ी में ले जाते हैं. इसका क्या भाव है? यही कि कोई गाड़ी में खिड़की खोल कर स्टेशन को देखता जाता है. कोई आनन्द से सो जाता है. पहुंच दोनों ही गये. जिनको इन श्रेणियों की पूरी जानकारी नहीं होती, ज्ञान नहीं होता, वे भी वहां पहुंच जायेंगे. यह आवश्यक नहीं है कि वहां पहुंचने के लिये हर प्रकार की चेतन्यताओं का अनुभव हो. तुम देखो जाग्रत से गहरी नींद, गहरी नींद से जाग्रत में हर आदमी प्रतिदिन आता है. जाता तो वह है (यह प्राकृतिक मार्ग है) मगर समझ नहीं है अतः भटकता फिरता है.

केवल एक अकाल पुरुष सबसे ऊँचा है उसको इष्ट बनाकर चले चलो. अपने आप पहुंच जाओगे. जो इन पर ठहरे उन्होंने इन स्थानों के नाम रख दिये हैं. इन नामों के कारण हम भ्रम में आ गये हैं. इष्ट पद है शान्ति, निर्भ्रांति, अडोलपना.